विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ५५ अंक ४
अगस्त २०१७

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०१७

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५५
अंक ८

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

अगस्त माह के जयन्ती और त्योहार

७	रक्षाबन्धन, स्वामी निरंजनानन्द
१४	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
१५	स्वतन्त्रता दिवस
२०	स्वामी अद्वैतानन्द

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री डी. एन. राय, पलारी, बलौदाबाजार (छ.ग.)	१०००/-
प्रो. रामशरण गौराहा, ब्राह्मण पारा, रायपुर	५०००/-
श्यामली सरकार, महोबा बाजार, रायपुर	२०००/-
स्व. भूषणलाल वर्मा, तर्रा, रायपुर (छ.ग.)	३०००/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
२७९. श्री नरोत्तम साहू, सिवनी, जि.जांजगीर-चांपा (छ.ग.)	सरस्वती शिशु मंदिर, पोस्ट-देवकर, जि.बेमेतरा (छ.ग.)
२८०. श्री रामगोपाल मोहला, मालाबार हिल्स, मुबंई (महा.)	महाराणा प्रताप गवर्नमेंट कॉलेज, पो.- अम्ब, जिला - ऊना
२८१. ” ”	गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, नरोट जयमल सिंह, पठानकोट
२८२. ” ”	विद्या मंदिर महाविद्यालय, पो.क़ईमगंज, फर्रुखाबाद (उ.प्र.)
२८३. ” ”	श्रीमती एस.बी. पटेल, आर्टस कॉलेज, पो.-वासो, जि. खेड़ा
२८४. ” ”	जी.ए. टोम्पे आर्टस कॉमर्स एंड साईस कॉलेज, चंदुर बाजार
२८५. ” ”	रामकृष्ण कॉलेज, आर.के. कॉलेज रोड, मधुबनी (बिहार)
२८६. ” ”	साईस कॉलेज, कोकराझार (असम)
२८७. ” ”	प्रेसीडेन्सी कॉलेज, मोतबंग, जि.-सेनापती, इम्फल (मनीपुर)
२८८. ” ”	गवर्नमेंट कॉलेज, पोखरण, जिला - जैसलमेर (राज.)
२८९. ” ”	गवर्नमेंट कॉलेज, रानीवारा, पो.-भींमल, जि.-जलोर (राज.)
२९०. श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	दयाल सिंह कॉलेज, करनाल (हरयाणा)
२९१. ” ”	महर्षि दयानंद यूनिर्वसिटी, रोहतक (हरयाणा)
२९२. प्रो. रामशरण गौराहा, ब्राह्मण पारा, रायपुर (छ.ग.)	शा.कन्या उच्च. मा. शाला, नूतन चौक, सरकंडा, बिलासपुर
२९३. ” ”	प्राचार्य, शा.उ.मा. शाला सेमरताल, पो.-कोनी, जि.बिलासपुर
२९४.	शास. माता शबरी नवीन कन्या महाविद्यालय, बिलासपुर
२९५. श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर	शास. शहीद गैंद सिंह महाविद्यालय, चारामा, जि.- कांकेर
२९६. श्री अरूप कांति धर, जयश्री पार्क, कोलकाता	बसन्ती देवी कॉलेज, रास बिहारी एवेन्यु, कोलकाता (पं.ब.)

श्रीकृष्ण-वन्दना

नरात्तङ्कोत्तङ्कः शरणशरणो भ्रान्तिहरणो,
घनश्यामो वामो व्रजशिशुवयस्योऽर्जुनसखः ।
स्वयम्भूर्भूतानां जनक उचिताचारसुखदः,
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ।।

– जो भगवान मानवों के भय को दूर करते हैं, शरणागतों के शरणदायक और भ्रम-निवारक हैं, जो मेघ सदृश श्याम सुन्दर हैं, जो व्रज बालकों के साथी और अर्जुन के सखा हैं, स्वयम्भू और जीवों के जनक हैं, जो उचित आचार-विचारवालों के लिये सुखप्रद हैं, वे शरणागतवत्सल अखिल भुवनेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हमें दर्शन दें । हमारी आँखें उनकी रूपमाधुरी का पान करती रहें ।

यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी,
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतधृदजः ।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः,
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ।।

जब जगत को दुख देने हेतु धर्म का ह्रास आरम्भ होता है, तब लोकमर्यादा के रक्षक लोकपति, अजन्मा, सन्तरक्षक, विमल, वेदवर्णित, व्रजनाथ भगवान ही अवतार रूप में शरीर धारण करते हैं । वे ही शरणागतवत्सल अखिल भुवनेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हमें दर्शन दें । हमारी आँखें उनकी रूपमाधुरी का पान करती रहें ।

पुरखों की थाती

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुर-रत्न-धनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ।।५६०।।

– कहीं यह सच का आश्रय लेती है, तो कहीं झूठ का; कहीं कठोर हो जाती है, तो कहीं कोमल; कहीं हिंसक, तो कहीं दयालु; कहीं कृपण हो जाती है, तो कहीं नित्य खर्चीली और कहीं अधिकाधिक धन एकत्र करनेवाली वारांगना के समान राजनीति भी अनेक रूपोंवाली होती है ।

सेवितव्यो महावृक्षः फलच्छायासमन्वितः ।
यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते।।५६१।।

– बुद्धिमान को चाहिए कि वह फल और छाया से भरपूर किसी महान वृक्ष की ही शरण ले, क्योंकि भाग्यवश उससे फल न मिले, तो भी छाया को तो कोई रोक नहीं सकता ।

सुमन्त्रितं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम् ।
कार्यकाले यथाशक्ति कुर्यान्न तु विचारयेत् ।।५६२।।

– समय आ जाने पर अच्छी सलाह, अच्छा पौरुष, अच्छे युद्ध और ठीक ढंग से भागना आदि जो भी उचित लगे, उसे ज्यादा सोच-विचार किये बिना तत्काल कर डालना चाहिए ।

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजंगमः ।
पालयन्नपि भूपालः प्रहसन्नपि दुर्जनः ।।५६३।।

– हाथी केवल छूकर ही मार डालता है और साँप केवल सूँघ कर समाप्त कर देता है । राजा पालन करते हुए ही ले डूबता है और दुष्ट हँसते-हँसते ही प्राणनाश कर देता है ।

विविध भजन

इतना तो करना स्वामी

इतना तो करना स्वामी, जब प्राण तन से निकले ।
गोविन्द नाम लेकर, फिर प्राण तन से निकले ।।
श्री गंगाजी का तट हो, यमुना का वंशी वट हो ।
मेरा साँवरा निकट हो जब प्राण तन से निकले ।।
श्रीवृन्दावन का स्थल हो, मेरे मुख में तुलसीदल हो ।
विष्णुचरण का जल हो, जब प्राण तन से निकले ।।
सन्मुख साँवरा खड़ा हो, वंशी का स्वर भरा हो ।
तिरछा चरण धरा हो जब प्राण तन से निकले ।।
सिर सोहना मुकुट हो, मुखड़े पे काली लट हो ।
यही ध्यान मेरे घट हो, जब प्राण तन से निकले ।।
केशर तिलक हो आला, मुख चन्द्र-सा उजाला ।
डालूँ गले में माला, जब प्राण तन से निकले ।।
कानों जड़ाऊँ बाली, लट की लटें हों काली ।
देखूँ छटा निराली, जब प्राण तन से निकले ।।
पीताम्बरी कसी हो, होठों पे कुछ हँसी हो ।
छबि यह ही मन बसी हो, जब प्राण तन से निकले ।।
पँचरंगी काछनी हो, पट-पीत से तनी हो ।
मेरी बात सब बनी हो, जब प्राण तन से निकले ।।
पग धो तृषा मिटाऊँ, तुलसी का पत्र पाऊँ ।
सिर चरण-रज लगाऊँ, जब प्राण तन से निकले ।।
आना अवश्य आना, राधे को साथ लाना ।
दरशन मुझे दिखाना, जब प्राण तन से निकले ।।
जब कंठ प्राण आवे, कोई रोग न सतावे ।
यम दरश न दिखावे, जब प्राण तन से निकले ।।
उस वक्त जल्दी आना, नहीं श्याम भूल जाना ।
मुरली की धुन सुनाना, जब प्राण तन से निकले ।।
सुधि होवे नाहिं तन की, तैयारी हो गमन की ।
लकड़ी हो ब्रज वन की, जब प्राण तन से निकले ।।
यह नेक-सी अरज है, मानो तो क्या हरज है ।
कुछ आपका फरज है, जब प्राण तन से निकले ।।

हरि बिन किसका कौन सहारा

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

हरि बिन किसका कौन सहारा?
हरि ही सबके कर्ता-भर्ता हरि ही सबकी जीवनधारा ।।
बड़ी प्रबल है हरि की माया, भीषण भवसागर है खारा ।
मायाधीन जीव निशिवासर भव में भटके मारा-मारा ।।
स्वार्थ-लीन मद-पीन, मीन-मन विषय-ग्रसित बहुतै बेचारा ।
भानुदत्त हरि-अनुकम्पा बिन कबहुँ न छूटै भव की कारा ।।

हैं भगवन तुम्हारे

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

अगर नाथ देखोगे अवगुण हमारे ।
तो हम कैसे भव से लगेंगे किनारे ।।
पतितों को पावन हैं करते कृपानिधि ।
किये पाप हैं इस सुयश के सहारे ।।
हमारे लिये क्यों देरी किये हो ।
गणिका अजामिल तो पल में उबारे ।।
माना अधम और अपावन कुटिल हैं ।
सब कुछ है लेकिन हैं भगवन तुम्हारे ।।
मन होगा निर्मल तुम्हारी कृपा से ।
इसे शुद्ध करने में 'राजेश' हारे ।।

करु मन नन्दनन्दन को ध्यान

नारायण

करु मन नन्दनन्दन को ध्यान ।
यहि अवसर तोहि फिर न मिलैगी, मेरी कह्यौ अब मान ।।
घूँघरवारी अलकैं मुख पै, कुंडल झलकत कान ।
नारायन अलसाने नैना, झूमत रूप निधान ।।

हे भारत की वीर सन्तानो ! देश की पुकार सुनो

पन्द्रह अगस्त भारतवर्ष के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विशेष होता है। इसी दिन हमारा भारतवर्ष सैकड़ों वर्षों की परतन्त्रता से मुक्त हुआ। आज के दिन प्रत्येक देशवासी में एक ओर परतन्त्रता से मुक्ति के उच्छ्वास, उमंग, उत्साह और आनन्द का वातावरण रहता है, तो दूसरी ओर विज्ञान, तकनीकी, सामरिक क्षेत्र में प्राप्त उपलब्धियों का भारत सरकार के द्वारा दिल्ली में जनता के समक्ष प्रदर्शन किया जाता है। इससे हमें आत्मशक्ति, आत्मगौरव और आत्मसम्मानपूर्वक जीवन जीने का गौरवबोध होता है। जहाँ हमें अपने देशवासियों की शासन व्यवस्था में पलने-बढ़ने, संरक्षण और विकसित होने का गौरव होता है, वहीं दूसरी ओर प्रसन्नता से आत्मसम्मानपूर्वक जीवन जीने का आश्वासन मिलता है। इस महोत्सव को बाल, युवा, वृद्ध, नर-नारी सभी उत्साह के साथ अपने-अपने स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा मनाते हैं और आनन्द लेते हैं।

तीसरी ओर यह दिवस हमें अपने प्राचीन इतिहास की याद दिलाता है। हम हमेशा यह ध्यान रखें कि जिन दुर्बलताओं के कारण हम परतन्त्र होकर पशुवत् यातना, सैकड़ों वर्षों तक असह्य अपमान, दुख और कष्ट झेलते रहे, जिस दुख से हमें मुक्त करने के लिये लाखों वीर स्वतन्त्रता सेनानियों ने अपना अमूल्य जीवन बलिदान दिया, उन्हें याद करें, उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करें और यह संकल्प लें कि हम वह भूल पुन: कभी नहीं करेंगे, जिसके कारण हम परतन्त्र हुए थे।

इन सबके अतिरिक्त सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, हम अपनी उपलब्धियों की समीक्षा करें कि स्वाधीनता के इतने वर्षों बाद हमने क्या किया? अन्य राष्ट्रों की तुलना में हमने कहाँ तक विकास किया? हम अपने उस संकल्प को याद करें, जिसमें हमने अपनी शासन व्यवस्था में सबको अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य और निर्भय, स्वाधीन सुरक्षित जीवन देने की लाल किले की प्राचीर से शपथ ली थी। उसकी पूर्ति के लिये हमने कहाँ तक सच्चाई से प्रयास किया और कहाँ तक जनता को उपलब्ध कराया, यह समीक्षा भी आवश्यक है। जन-साधारण अपने नागरिक कर्तव्यों के प्रति सजगता और उसके पालन में कितने अग्रसर हुए, इस देश के विकास एवं देशवासियों के प्रति प्रेम, सौहार्द की अभिव्यक्ति में हम कितने कर्तव्यनिष्ठ बने, इसकी समीक्षा भी इस दिवस पर अपेक्षित है।

क्या हम यह आर्तनाद सुन रहे हैं?

क्या हम देश की पुकार सुन रहे हैं? क्या देशवासियों की व्यथा को अपने हृदय से अनुभव कर रहे हैं? हमारा प्रिय भारत देश विज्ञान, तकनीकी आदि के क्षेत्रों में विश्व के विकासशील देशों की श्रेणी में है। लेकिन आज भी भारत में बच्चे कुपोषण के शिकार हो रहे हैं, भूख से कई परिवार पीड़ित हैं। अन्न की त्रासदी है। पारिवारिक आपदाओं में लिये गये ऋणग्रस्त निर्धन व्यक्ति चिन्तित और त्रस्त हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में समुचित शिक्षा, स्वास्थ्य का अभाव है। उच्च शिक्षा इतनी महँगी है कि जन-साधारण के लिये पढ़ना कठिन है। इसके बाद चोरी, ठगी, हिंसा, कदाचार, नागरिक असुरक्षा, सम्बन्ध-विच्छेद, वृद्धाश्रमों में बढ़ती संख्या और आतंकवाद ये सारी चीजें मानव-जीवन को कष्टमय बनायी हुई हैं। क्या हम यह आर्तनाद सुन पा रहे हैं? स्वाधीनता के ६९ वर्ष बाद भी हम इन्हें भारत से पूर्णत: दूर करने में सक्षम क्यों नहीं हुए? यदि नहीं, तो क्या हम वास्तव में सच्ची स्वतन्त्रता देने में सफल हुए? हमें उपरोक्त समस्याओं पर विचार करना होगा और शीघ्रातिशीघ्र देशवासियों को सच्ची स्वतन्त्रता का बोध कराना होगा।

देश है पुकारता

हे देश के युवा मित्रो ! क्या आपको अपने देशवासियों की पुकार नहीं सुनाई पड़ रही है? क्या जिस देश ने आपको इतनी सुख-सुविधाएँ और विकास के साधन प्रस्तुत किये, उसके प्रति कर्तव्य की पुकार आपको व्यग्र नहीं कर रही है? विदेशी आक्रान्ताओं से प्रजा को बचाने के लिये महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, कुंवर सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह आदि अनेकों वीरों ने अपने जीवन को समर्पित कर दिया। तब आप स्वतन्त्र भारत में आनन्दोच्छ्वास ले रहे हैं। क्या आपको इस देश के प्रति कोई कर्तव्य-बोध नहीं हो रहा है?

आज देश को हमारी आवश्यकता है

एक पाश्चात्य विद्वान ने कहा था, ''आज मुझे देश की आवश्यकता भले ही न हो, किन्तु आज देश को मेरी आवश्यकता है।'' मेरे बन्धुओ ! भारत में शान्ति स्थापना और इसे अक्षुण्ण रखने के लिये, इन विघटनकारी शक्तियों से बचाने के लिये इसकी चतुर्दिक भौगोलिक रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। इसमें अपने स्तर पर हमारा क्या योगदान हो सकता है, इसे सोचना और करना हमारा कर्तव्य है। इस देश ने हमें सब प्रकार से सुरक्षा-सुविधा देकर हमें सर्वोत्कृष्ट शिखर पर लाने में योगदान दिया। आज इस देश को हमारी आवश्यकता है। हम इसकी रक्षा में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देंगे। भारत की सांस्कृतिक रक्षा और विकास करना हमारा कर्तव्य है। भारत में एक भी व्यक्ति, यहाँ तक कि पशु आदि भी भूखे और निराश्रित न रहें, इसका ध्यान रखना हमारा कर्तव्य है। जैसाकि स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – हमारे देश में जब तक एक भी कुत्ता भूखा है, उसके भोजन की व्यवस्था करना हमारा धर्म है।

मेरे प्रिय मित्रो ! देश के सर्वांगीण विकास में संवैधानिक और नैतिक रूप से अपने कर्तव्यों को स्मरण कर उसकी पूर्ति का प्रयास करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। आइये, हम इस देश को इसके प्राचीन गौरव में स्थापित करने के लिये अपनी भूमिका वहन करने हेतु कटिबद्ध होकर संकल्प लें।

समाज हमें क्यों याद करेगा?

इस समाज ने सदा सर्वाधिक देनेवालों को, त्यागियों को श्रद्धापूर्वक याद किया। आज देश के स्वतन्त्रता-सेनानियों, वीर सैनिकों, देशभक्तों, समाज-सुधारकों, राजनेताओं, सन्तों, महान पुरुषों को हम क्यों याद करते हैं? क्योंकि उन्होंने हमारे लिये अपने तन-मन-धन-बुद्धि-सुख-सुविधा को त्यागकर देश के लिये अपना जीवन समर्पित किया।

स्वामी विवेकानन्द को विश्व क्यों मानता है?

स्वामी विवेकानन्द को विश्व क्यों अपना मानता है। क्योंकि उन्होंने अपने मन, वचन और कर्म से सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिये कार्य किया। शिवांश सम्भूत स्वामी विवेकानन्द जी का सम्पूर्ण जीवन भगवान शिव के समान क्षमा, दया, करुणा, सर्व-प्राणिप्रेम एवं परम उदारता से सम्पन्न था। उन्होंने जगत में सर्वाधिक मनुष्य के कल्याण का चिन्तन और कार्य किया। मानव के सर्वांगीण विकास एवं मनुष्य के वास्तविक दिव्य स्वरूप की अभिव्यक्ति हेतु आजीवन अहर्निश अथक श्रम और प्रयत्न करते रहे। अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस द्वारा प्रदर्शित नर-नारायण की सेवा में उन्होंने अपने जीवन को अध्यास्त्र बना दिया। एक क्रौंच पक्षी की संवेदना की अभिव्यक्ति से महर्षि वाल्मीकि विश्व की अनुपम कृत्ति महाकाव्य रामायण की रचना कर महाकवि बन गये। क्रौंची के वियोग से कातर ऋषि के मुख से अकस्मात् नि:सृत हुआ –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

वैसे ही मानवीय संवेदना की प्रांजल अभिव्यक्ति स्वामी विवेकानन्द के गद्यगीत से हुई। देशवासियों के दुख से दुखित होकर उन्होंने निष्काम भाव से 'जीव की शिवभाव से सेवा' का उद्घोष किया और समाज को नर-नारायण की सेवा करने का हृदय से आह्वान किया। उन्होंने अमेरिका से खेतड़ी के राजा को पत्र में लिखा – ''यह जीवन क्षणभंगुर है, वे ही जीवित हैं, जो दूसरों के लिये जीते हैं, शेष मृतप्राय हैं।'' कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की रमणीयता विवेकानन्द के भारतीय संस्कृति के गौरव-गरिमा गायन, उनकी भारत की भौगोलिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति और मानवीय संवेदना में परिलक्षित होती है। उपनिषदों का शाश्वत सन्देश – 'अयमात्मा ब्रह्म' का परिदर्शन स्वामीजी के 'नर-नारायण' के महिमाबोधक इस महावाक्य में परिदर्शित होता है, जिसमें वे कहते हैं – 'नर ही नारायण है', 'जीव ही शिव है', 'मैं उस ईश्वर की पूजा करता हूँ, जिसे अज्ञानी लोग 'मनुष्य' कहते हैं।'

मैं विश्व हेतु कुछ करूँगा – स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द अपने देश और विश्व के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए, उनकी सेवा करने हेतु कटिबद्ध होकर कहते हैं – ''अपने देशवासियों के प्रति मैंने थोड़ा कर्तव्य निभाया है। अब जगत के लिये, जिससे मुझे यह शरीर मिला है, देश के लिये जिसने मुझे यह भावना प्रदान की है और मनुष्य के लिये जिसमें मैं अपनी गणना कर सकता हूँ, मुझे कुछ करना है।''

अपने इन्हीं शाश्वत विश्वप्रेम की भावनाओं और कार्यों से स्वामी विवेकानन्द सम्पूर्ण विश्व के आदर्श और प्रिय हैं। मेरे युवा मित्रो ! अपने देश की पुकार सुनो और अपने कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होओ, आज देश को तुम्हारी आवश्यकता है। भारत माँ तुम्हें पुकार रही है, वह प्रतीक्षा में टकटकी लगाये खड़ी है। क्या तुम अभी भी मौन बैठे रहोगे? ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (८)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

३० मई से २ जून (१८९८) : अगले सोमवार को वे अपने मेजबानों (सेवियर दम्पती) के साथ एक सप्ताह के लिए बाहर चले गए और हम लोग अल्मोड़ा में रहकर पढ़ाई, चित्र आँकना तथा वनस्पतियों का अध्ययन करते रहे। इसी सप्ताह में एक दिन सांध्य भोजन के बाद हम बैठकर बातें कर रही थीं। बड़े विचित्र ढंग से हमारी विचारधारा 'इन मेमोरियम'[१] पर केन्द्रित हो गयी और हममें से एक ने उसकी उच्च स्वर में आवृत्ति की –

Yet in these ears, till hearing dies,
One set slow bell will seem to toll
The passing of the sweetest soul
That ever looked with human eyes.
I hear it now, and O'er and O'er,
Eternal greetings to the dead;
And 'Ave, Ave, Ave' said'
'Adieu, Adieu', for evermore.

**तथापि जब तक मेरे कानों में श्रवणशक्ति रहेगी,
तब तक एक हल्की-सी घण्टाध्वनि
बजती हुई सूचित करती रहेगी कि
मानव-शरीर में निवास करनेवाली
वह प्रिय आत्मा अब प्रस्थान कर चुकी है।
मैं अब भी उसे निरन्तर सुन पाता हूँ,
जो दिवंगत आत्मा के प्रति शुभकामना
व्यक्त करते हुए कह रही है,
'तुम्हारा मंगल हो! मंगल हो!
अलविदा! सदा के लिए अलविदा'!''**

उसी क्षण सुदूर दक्षिण में हमारे एक परम आत्मीय इस परिदृश्यमान जगतरूपी मन्दिर से किसी सूक्ष्मतर ज्योति के राज्य में प्रस्थान कर रहे थे। इस संसार के परे स्थित उस जगत में भगवत्सान्निध्य का स्पष्टतर होना ही सम्भव है और इसीलिए वहाँ आलोक भी उज्ज्वलतर है। परन्तु अभी तक हमें वह दुस्संवाद मिला नहीं था। एक दिन और उस अज्ञात की महीयसी छाया हमें आच्छन्न किये रही। इसके बाद शुक्रवार को प्रात:काल हम लोग बैठकर किसी कार्य में लगी थीं, उसी समय एक तार आया। तार एक दिन विलम्ब से पहुँचा था। उसमें लिखा था, ''कल रात गुडविन ने ऊटकमण्ड में देहत्याग कर दिया है।'' पता चला कि उस अंचल में टायफायड ज्वर की जो महामारी फैली थी, हमारे मित्र उसी के ग्रास बन गये थे और अन्तिम श्वास तक स्वामीजी के बारे में ही बोलते हुए उन्हीं के सान्निध्य के लिए आकुलता व्यक्त कर रहे थे।

रविवार (५ जून) की संध्या के समय स्वामीजी अपने आवास पर लौट आये।... उन्हें यह दुस्संवाद ज्ञात न था, परन्तु पहले से ही उनके चेहरे पर विषाद की छाया दिख रही थी और उन्होंने अपना मौन तोड़ते हुए हमें उन महापुरुष (पवहारी बाबा) का स्मरण कराया, श्रीरामकृष्ण के बाद जिनके प्रति उनका सर्वाधिक प्रेम था और जिन्होंने नाग द्वारा डस लिए जाने पर केवल इतना ही कहा था, 'मेरे प्रियतम का दूत आया था।' वे बोले, ''अभी अभी मुझे एक पत्र मिला है कि पवहारी बाबा ने अपने शरीर की पूर्णाहुति देकर अपने यज्ञों का समापन कर लिया है। यज्ञ की ज्वाला में उन्होंने अपनी देह को जला दिया है।'' उनके श्रोताओं में से एक ने कहा, ''स्वामीजी, क्या यह बड़ा अनुचित कार्य नहीं हुआ है?''

स्वामीजी ने अत्यन्त आवेगपूर्ण कण्ठ से उत्तर दिया, ''मैं भला क्या कह सकता हूँ, वे इतने महान् थे कि मैं उनके क्रिया-कलापों पर विचार करने का अधिकारी नहीं हूँ। उन्होंने क्या किया, यह वे ही जानें।''

इसके बाद और कोई बात नहीं हुई और संन्यासीगण अपने स्थान पर चले गये। तब भी दूसरे समाचार की बात उनके सम्मुख व्यक्त नहीं की गयी थी।

---

१. अंग्रेज कवि टेनिसन द्वारा उनके प्रिय मित्र आर्थर हेनरी हेलम के निधन पर रचित सुप्रसिद्ध शोकगीत।

अगले दिन प्रात:काल वे बड़े सबेरे आये। वे बड़े ही गम्भीर भावावेग में डूबे हुए थे। उन्होंने बताया कि वे भोर में चार बजे ही उठ गये और किसी (मिस मैक्लाउड) ने उनसे मिलने जाकर उन्हें गुडविन की मृत्यु का समाचार दे दिया था। इस सदमे को उन्होंने शान्तिपूर्वक सह लिया था। कुछ दिनों बाद उन्होंने उस स्थान में रहने से इनकार कर दिया, जहाँ उन्हें पहली बार यह दुस्संवाद मिला था और उन्होंने अपनी इस दुर्बलता के बारे में बताया कि वहाँ उनके सर्वाधिक विश्वस्त शिष्य की आकृति निरन्तर उनके मन पर छाई रहती है। इसका अनौचित्य बताते हुए उन्होंने कहा कि किसी की स्मृति से भी इस प्रकार पीड़ित होना मानो वैसा ही है, जैसे क्रमविकास के उच्च स्तरों में पहुँचकर भी मछली या कुत्ते के लक्षण बनाये रखना; इसमें मनुष्यत्व नहीं है। मनुष्य को इस भ्रम पर विजय पाकर यह जान लेना होगा कि दिवंगत आत्माएँ पूर्ववत् ही हमारे निकट और हमारे बीच उपस्थित हैं। उनकी अनुपस्थिति और बिछोह कल्पना मात्र है। फिर अगले ही क्षण वे इस जगत् को परिचालित करनेवाली किसी व्यक्तिगत सत्ता (अर्थात सगुण ईश्वर) के अस्तित्व की निर्बुद्धितापूर्ण कल्पना के विरुद्ध कठोर शब्दों में कहते, "गुडविन को मार डालने के लिए ऐसे ईश्वर के विरुद्ध युद्ध छेड़ना और उसे समाप्त कर डालना क्या हमारा अधिकार और कर्तव्य नहीं है? अहा! गुडविन यदि बचा रहता, तो कितने सारे कार्य कर पाता!" ...

परन्तु इन प्रथम कुछ घण्टों के दौरान स्वामीजी अपने शोक के बारे में शान्त रहे और हमारे साथ बैठकर धीरतापूर्वक विविध विषयों पर बातें करने लगे। उस दिन प्रात:काल वे भक्ति के सम्बन्ध में बोलने लगे कि किस प्रकार वह तपस्या में परिणत हो जाती है और किस प्रकार भगवत्प्रेम की प्रखर धारा मनुष्य को व्यक्तित्व की सीमा से बहुत दूर बहा ले जाती है, तथापि वह पुन: उसे एक ऐसे स्थान पर छोड़ जाती है, जहाँ वह व्यक्तित्व के मधुर बन्धन से छुटकारा पाने के लिए छटपटाता रहता है। ...

परन्तु इन्हीं दिनों स्वामीजी कहीं अन्यत्र जाने और एकान्तवास करने के लिये आतुर हो उठे। जिस स्थान पर उन्हें गुडविन की मृत्यु का समाचार मिला था, वह उनके लिए असह्य हो उठा था और निरन्तर होनेवाले पत्र-व्यवहार के फलस्वरूप उनका वह घाव क्रमश: गहरा होता जा रहा था। एक दिन उन्होंने कहा कि श्रीरामकृष्ण बाहर से केवल भक्तिमय प्रतीत होने पर भी वस्तुत: भीतर से पूर्ण ज्ञानमय थे; पर वे स्वयं बाह्यत: केवल ज्ञानमय प्रतीत होने पर भी भीतर भक्ति से परिपूर्ण थे और इसी कारण बीच-बीच में उनमें नारीसुलभ दुर्बलता एवं कोमलता के भाव भी दीख पड़ते थे।"

इसी मानसिक पृष्ठभूमि में गुडविन के विषय में उपरोक्त कविता लिखी गयी थी। इस कविता को निवेदिता ने ही लिखना शुरू किया था। वह त्रिपदी छन्द में आरम्भ हुई थी, परन्तु स्वामीजी के हाथों में पड़कर उसमें आमूल परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन से निवेदिता कहीं क्षुब्ध न हों, अत: स्वामीजी ने यह कहते विस्तारपूर्वक व्याख्या की थी कि 'शब्दों को केवल तुक तथा छन्द में ग्रथित करने के स्थान पर कवित्वपूर्ण अनुभव करना कहीं अधिक महत्त्व की बात है'। उस कविता को गुडविन की माता के पास भेज दिया गया। कविता इस प्रकार थी –

Requiescat in Pace!

Speed forth, O soul, upon thy
　　Star-strewn path,
Speed, blissful one, where thought
　　is ever free,
Where time and sense no longer
　　mist the view,
Eternal peace and blessings be on thee!
Thy service true, complete thy sacrifice,
Thy home the heart of love
　　transcendent find,
Remembrance sweet, that kills all
　　space and time,
Like alter-roses, fill thy place behind.
Thy bonds are broke,
　　thy quest in bliss is found.
And – one with that which comes as
　　Death and Life, –
Thou helpful one! unselfish e'er on earth'
Ahead, still aid with love this world of strife.

(क्रमश:)
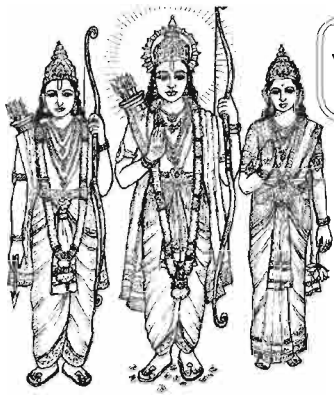
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (२/६)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

जब नवधा भक्ति का उपदेश देने लगे, तो कहने लगे –

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।३/३४/८

यह कहते हुए बोले –

सातवँ सम मोहि मय जग देखा।। ३/३५/३

सातवीं भक्ति है कि सर्वत्र मुझे ही देखे। भगवान डर गये कि अब मैंने सर्वत्र कह दिया, तो यह कहीं बुरे लोगों के पास ही जाकर न बैठ जाय। यह न सोचे कि भगवान तो सर्वत्र हैं और ज्ञानी, मूर्ख कोई है नहीं, कोई पापी नहीं, कोई बुरा नहीं, तो चलो पापी के पास बैठें, तो तुरन्त उन्होंने कहा कि सर्वत्र तो मैं सम हूँ, पर याद रखना –

सातवँ सम मोहि मय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा।। ३/३५/३

संत को मुझसे भी बड़ा मानना। बड़ी चतुराई से प्रभु का संकेत यह था कि कहीं मेरी सर्वव्यापकता का दुष्परिणाम न हो जाय। लोगों के अन्त:करण में ऐसा न लगने लगे, जैसे किसी ने यह सुन लिया कि 'संपति सब रघुपति कै आही।' उसके बाद किसी के घर में डाका डालकर चोरी से उसकी सम्पत्ति उठा ले आए। जब उनसे पूछा गया कि क्यों लाये, तो बोले – संपति सब रघुपति कै आही। जब सब संपत्ति भगवान की है, तो मैंने किसी दूसरे की संपत्ति थोड़े ही लूटी है। उपदेशों का ऐसा कोई अनर्थ न कर ले। इसलिये भगवान सावधान होकर उपदेश दे रहे हैं।

मूल संकेत यह है कि साधक साधन काल में उन मान्यताओं को स्वीकार नहीं कर लेता, जो आगे चलकर तत्त्वत: अनुभूति में आती हैं। इसीलिये भरत पूछते हैं, महाराज, संत और असंत का लक्षण क्या है? तब भगवान राम बड़े विस्तार से संत की महिमा और असंत का वर्णन बताते हैं। पर अन्त में खेल समाप्त भी कर देते हैं। समाप्त कहाँ कर देते हैं? बोले, भरत, तुमने सुन लिया? हाँ महाराज। बोले बात तो सच यह है –

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।७/४१

न कोई गुण होता है, न कोई दोष होता है, यह सब माया की कृति है, अविवेक का परिणाम है। लगता है, भगवान की बातें परस्पर विरोधी हैं। कभी-कभी संतों की भी वाणी आप पढ़ें, श्रीरामकृष्ण परमहंस देवजी के प्रसंग में मैं पढ़ रहा था कि उनके शिष्य नाव पर बैठकर गंगा पार जा रहे थे। उसी नाव पर बैठे कुछ व्यक्ति परमहंस देव की निन्दा कर रहे थे। उसे सुनकर शिष्य क्रोध में इतने उत्तेजित हो गये कि नाव को ही डुबा देने के लिये मचल उठे। उन सब के द्वारा क्षमा माँगने पर बड़ी मुश्किल से वे शान्त हुए। इस घटना को दूसरे शिष्य ने जब परमहंस देव जी को सुनाया, तो वे प्रसन्न नहीं हुए, उलटे उस शिष्य की इस वृत्ति की उन्होंने भर्त्सना की। इसमें झगड़ा करने की क्या बात थी। पुन: किसी दिन एक दूसरे शिष्य ने उन्हें बताया कि कुछ लोग उनकी निन्दा कर रहे थे, पर मैं शान्त भाव से सुनता रहा। उन्हें आशा थी कि परमहंस देव यह सुनकर प्रसन्न हो जाएँगे, पर यह सुनते ही वे बिगड़ पड़े – अच्छा, वे लोग निन्दा करते रहे और तुम चुपचाप सुनते रहे? उन्होंने ऐसी परस्पर विरोधी बातें कही। शास्त्र में तो लिखा हुआ है, रामायण में भी लिखा हुआ है –

हरि हर निंदा सुनइ जो काना।
होइ पाप गोघात समाना।।६/३१/२
काटिअ तासु जीभ जो बसाई १/६३/४

जब आप भगवान की वाणी, संत की वाणी पढ़ेंगे, तो कभी-कभी लगता है, ये परस्पर विरोधी बातें हैं। एक ही व्यक्ति ने आज एक उत्तर दिया, कल दूसरा उत्तर दिया। एक सज्जन ने मुझसे पूछा, तो मैंने यही कहा कि भई, संत कोई वकील थोड़े ही होते हैं कि वे मुकदमा लड़ें और ध्यान

रखें कि अपनी ही बात मुझसे कट न जाय। प्रत्येक बात अपने स्थान पर उपयोगी है। उसका अर्थ है। उसका तात्पर्य है। इसलिये कभी व्यक्ति अगर कायरता के कारण मौन हो गया, तो निंदनीय है और किसी दूसरी स्थिति में व्यक्ति किसी अन्य मन:स्थिति में उसे स्वीकार कर ले, तो वह एक अलग स्थिति है। इसलिये संत अलग-अलग उपदेश देते हैं, भगवान अलग अलग उत्तर देते हैं। भगवान ने पहले संत-असंत का भेद विस्तार से बताया और यह कह दिया कि असंत का संग तो कभी नहीं करना चाहिये। अन्त में समाप्त कर दिया कि न तो संत होता है, न असंत होता है, न तो गुण होता है, न दोष होता है।

प्रभु का साधक के लिये मानो यही संकेत है। परम सत्य ईश्वर ही है, ब्रह्म ही है, उसको छोड़कर कुछ और है ही नहीं। यह सत्य केवल दोहराने से ही नहीं होगा। बल्कि हम जैसा अनुभव कर रहे हैं, वहीं से प्रारम्भ करें। जब धीरे-धीरे हमारी अनुभूति बढ़ती जाती है, ज्यों-ज्यों हमें प्रतीत होने लगता है, तब हम सही दिशा में चलकर उस परम सत्य का साक्षात्कार करने में समर्थ होते हैं।

मानो यह जीव विभीषण है। जीव की समस्या यह है कि प्रारम्भ में उसकी आसक्ति है। धर्मरुचि के रूप में भी प्रतापभानु से उसकी आसक्ति है। जब प्रतापभानु का जन्म विश्रवा मुनि के पुत्र रावण के रूप में होता है, तो धर्मरुचि भी मुनि के छोटे पुत्र के रूप में, विभीषण के रूप में जन्म लेते हैं। विश्रवा मुनि के पुत्र के रूप में जन्म लेकर उन्होंने एक भूल की। उन्होंने सोचा, जब रावण और मैं दोनों भाई हैं, तो भाई के धर्म का पालन हमारा कर्तव्य है। रावण मेरा बड़ा भाई है, तो मैं उसकी आज्ञा पालन करूँ, सेवा करूँ। इस धर्म का तो बड़ा प्रचार है। समाज में लोग उसी को स्वीकार करना चाहते हैं। इस बात को मैं कई बार कहता हूँ। जब मैंने प्रवचन करना प्रारम्भ किया था, तब एक सज्जन ने अपने घर में कथा कहने के लिये आमन्त्रित किया। मैंने पूछा – ''कौन से प्रसंग पर कथा कहें? उन्होंने कहा – बस, इसी दोहे पर – 'अनुचित उचित विचार तजि जे पालहिं पितु बैन।' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि भक्ति-ज्ञान का प्रसंग छोड़कर, इस दोहे में ही इनको क्या महत्त्वपूर्ण लग रहा है? पर बाद में रहस्य खुला। जब निकल कर बाहर आया, तो उनके लड़के युवा थे, घर में बहुएँ भी थीं। लड़के ने बताया, आपको पता है, आपसे कथा क्यों कहलवाई गई है? बहुओं और लोगों से पटता नहीं है। विवाह करना चाहते हैं। हम लोग विरोध कर रहे हैं, इसीलिये कथा कहलवाई गई है। यह कथा तो बहुत बढ़िया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ के समर्थन के लिये कराए। क्या तुलसीदासजी ने इस दोहे को इसलिये लिखा होगा कि प्रत्येक वृद्ध व्यक्ति अपना विवाह करने के लिये अपने बेटों का मुँह बन्द करने के लिये इस दोहे का उद्धरण दे दें? बड़े भाई को पिता के तुल्य मानना चाहिए, बिल्कुल ठीक है। पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिये, यह भी धर्म है। सब है, पर क्यों है? जब यह कहा गया कि उचित-अनुचित विचार छोड़कर पिता की आज्ञा माननी चाहिये, तो इसके मूल में धर्म का जो तत्त्व है, वह यह नहीं है कि पिता को यह अधिकार दे दिया गया कि वह उचित-अनुचित का बिना विचार किए आज्ञा दे दे, गुरु को अधिकार दे दिया कि वह उचित-अनुचित आज्ञा दे दे। यह मान कर वह वाक्य लिखा गया कि पिता और गुरु तो स्वयं उचित का विचार करके ही आज्ञा देंगे। इसलिये नहीं लिखा गया कि इसका उलटा अर्थ लेकर आप जो चाहें वह आज्ञा अपने पुत्र या शिष्य को दें। शास्त्र कहते हैं, गुरु वशिष्ठ यह कहते हैं कि भरत, पिता की आज्ञा मान लेने से लोक में यश और परलोक में स्वर्ग मिलता है। फिर प्रश्न यही है, यदि पिता कोई ऐसी आज्ञा दें, जो स्वयं के लिये अकल्याणकारी हो और पिता भी संकट में पड़ जाएँ, गुरुजनों को संकट में डाल दे, तो क्या उसे करना चाहिए? यदि वह सज्जन होगा, तो सोचेगा कि जब इन्होंने मेरे ऊपर छोड़ दिया है, तब मेरा कर्तव्य है कि हम अनुचित बात न कहें।

यह बात बार-बार भरतजी गुरु वशिष्ठ के सामने कहना चाहते हैं कि जिस कार्य के द्वारा पिता का अहित हो, समाज का अहित हो, स्वयं मेरा अहित हो, उसे नहीं करना चाहिए। इसलिये श्रीभरतजी ने उस धर्म को स्वीकार नहीं किया। पिता, माता और उन समस्त धर्मों का एक रूप है और संसार का व्यक्ति तो अपने अनुकूल धर्म चाहेगा। मान लीजिए कि लिखा हुआ है कि पुण्डरीक भक्त थे। वे पिता के चरण दबा रहे थे। भगवान आ गये, पर उन्होंने पिता का चरण दबाना बन्द नहीं किया, पिता के चरण छोड़कर नहीं उठे। उन्होंने भगवान के लिये एक ईंट सरका दी, भगवान उस पर खड़े हो गये। यह तो पितृभक्ति और भगवान की उदारता का दृष्टान्त है। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक पिता यही कहे कि तुम मेरे पैर दबाते रहो, भगवान तुम्हारे बगल में खड़े ही रहेंगे। वे पुण्डरीक के लिये खड़े रहेंगे, पर आपके लिये कहीं खड़े हुए दिखाई नहीं देंगे। पिता तो यही

कहेगा कि नहीं भाई, सेवा के साथ तुम्हें भगवान का भी ध्यान करना चाहिये, भगवान की भी सेवा करनी चाहिये।

इसलिये रामचरितमानस में बार-बार एक समन्वय का सूत्र दिया गया है, मानो यह बताने के लिये कि संसार में समाज उसी धर्म का समर्थन करेगा, जिसके द्वारा उसके कार्य की उचित-अनुचित की कोई समीक्षा न हो। अधिकांश व्यक्ति इसी धर्म को जीवन में स्वीकार करते हैं, इसी को महत्त्व देते हैं। विभीषण जैसा व्यक्ति भी इसी भ्रम से ग्रस्त था। उसने भी दोनों बातें मान ली थीं, एक यह कि रावण मेरा बड़ा भाई है और दूसरा यह कि रावण दूसरों के लिये बुरा होगा, पर मेरे लिये नहीं है। ये दो महामंत्र लोगों ने भी सीख लिए हैं। यदि कोई बुरा है, तो दूसरों के लिये बुरा है, पर मेरे लिये तो नहीं है, मेरे लिये तो अच्छा है। यह भी कोई सिद्धान्त हुआ क्या? अगर कोई व्यक्ति किसी के प्रति भी अन्याय करता है, तो अन्यायी है, किसी की भी बुराई करता है, तो वह बुरा है। यह सामान्य सिद्धान्त है। ये दो सूत्र विभीषण के जीवन में समस्या बन गई। उन्होंने मान लिया कि मेरे प्रति तो रावण ने कभी दुर्व्यवहार नहीं किया। वैसे रावण सद्व्यवहार भी करता था। उसने जब लंका पर अधिकार किया, तो सारे राक्षसों का ध्यान रखा। उसने सारे राक्षसों को सुन्दर निवास स्थान दिया। सबको बढ़िया से बढ़िया भवन, सुविधा, सुख मिले, इसका ध्यान रखा –

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे।
सुखी सकल रजनीचर कीन्हे।।१/१७८/७

अपने भाइयों का विवाह कराया –

पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई। १/१७७/४

विभीषण और कुम्भकर्ण का विवाह कराया। उसने यह सब किया, पर सब के मूल में उसकी वृत्ति तो एक ही थी। वह वृत्ति तब प्रगट हुई, जब लंका के युद्ध में बन्दरों के आक्रमण से राक्षस भागने लगे, तब पीछे तलवार निकाल कर रावण ने कहा कि ये जो बड़े महल दिए गये थे, खा-पी रहे थे ठाठ से, काहे के लिये?

सर्बसु खाइ भोग करि नाना।
समर भूमि भए बल्लभ प्राना।। ६/४१/८

कहाँ जा रहे हो? याद रखो –

जो रन बिमुख सुना मैं काना।
सो मैं हतब कराल कृपाना।। ६/४१/७

तुममें से एक भी पीछे हटा, तो मैं सिर काट लूँगा। यही रावण और श्रीराम के दर्शन में अन्तर है। भगवान राम बन्दरों को भागते देखते हैं, तो तुरन्त सुग्रीव, लक्ष्मणजी से कहते हैं –

सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन।। ६.६७

इन्हें विश्राम की आवश्यकता है। ये लड़ते-लड़ते थक गये हैं। मैं लड़ने जा रहा हूँ। एक बात याद रखिएगा, भगवान श्रीराम को बन्दरों की ही चिन्ता नहीं है, राक्षसों की भी चिन्ता है। एक बार ऐसी लड़ाई छिड़ी कि न बन्दर पीछे हट रहे हैं और न राक्षस। बन्दर तो यह सोच रहे हैं कि प्रभु कितने उदार हैं कि हमारी कायरता को भी कायरता नहीं माना, तो प्राण चले जायँ, तो भी हम पीछे नहीं हटेंगे। राक्षस सोचते हैं कि हटकर पीछे जायेंगे कहाँ? पीछे तो रावण तलवार लिये खड़ा है। इस तरह से कोई पीछे हट ही नहीं रहा है। उनकी दृष्टि राक्षसों पर पड़ी। उन्हें दया आ गई। तब भगवान राम ने दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा होकर कहा –

द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर।६.८९

दोनों ओर के लोग लड़ते-लड़ते थक गये हैं, अच्छा होगा कि हम और रावण लड़ें और आप लोग दर्शकों की भाँति देखें। मानो श्रीराम को यह चिन्ता है कि राक्षसों को भी विश्राम मिलना चाहिये। श्रीराम की यह शीलता, उदारता सारे राक्षसों को सम्मोहित कर लेती है।

वस्तुत: विभीषण की यह समस्या थी, उन्होंने सब कुछ जानते हुए भी अपने हृदय को बाँट रखा था कि ठीक है, वह बुरा है, पापी है, तो दूसरों के लिये है, मेरे लिये बहुत अच्छा है। रावण एक बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था। जब उसने देख लिया कि विभीषण तो भक्ति-भाव का प्रेमी है, तो उसके लिये एक मन्दिर बनवा दिया कि पूजा किया करे। विभीषण सोचते थे रावण कितना अच्छा है कि मेरे लिये मन्दिर बनवा दिया, पूजा की सुविधा दे दी। पर रावण तो अनुभवी था। पिछले जन्म की भूल उसने नहीं दुहरायी। यही रावण पूर्व जन्म में हिरण्यकशिपु था। उसने प्रह्लाद को भगवान का नाम लेने से रोका, तो प्रह्लाद को पाँच वर्ष की अवस्था में ही भगवान मिल गये और हिरण्यकशिपु का वध हुआ। रावण बना, तो समझ गया कि यह रोकना-टोकना बिल्कुल ठीक नहीं है। सुविधा देना ठीक है। उसने बहुत बढ़िया उपाय निकाला कि यह मन्दिर में पूजा करते रहे और हम बाहर मनमानी करते रहें। इसमें क्या बुराई है?

क्या हम लोगों ने जीवन में यही बँटवारा नहीं कर लिया है? भीतर विभीषण का पूजन भी चल रहा है और बाहर रावण का अत्याचार भी चल रहा है। बस यही संकेत था।

हनुमानजी सन्त हैं। सत्संग क्या बताता है? मानो जीव सो रहा था, तो वहाँ सन्त आ गया। तब संत ने जो संकेत दिया, वही सन्दर्भ कथा याद रखिए – पूजा-पाठ केवल सद्‌गुणों का ही प्रतीक नहीं होता। कभी-कभी उसके मूल में कुछ अन्य भाव भी होते हैं। पूजा विवेक से है, तो धन्य है। अगर मोह सुविधा दे दे, तब तो फिर सावधान होने की बात है। कहा जाता है कि एक सज्जन नित्य प्रति प्रात:काल चार बजे उठकर प्रार्थना करते थे। एक दिन कुछ आलस्य आ गया, देर हो गई उठने में। किसी ने आकर जगा दिया। जब जगा दिया, तो उन्होंने गद्‌गद होकर उसे प्रणाम किया और प्रार्थना की – कितना आपने उपकार किया ! मुझे सोते से जगा दिया। आप कोई संत हैं, अपना परिचय दीजिये! जगानेवाले ने कहा कि आप पूछ रहे हैं, तो मेरा सच्चा परिचय तो यही है कि मैं पाप हूँ। नहीं, नहीं, आप पाप होते तो क्या मुझे प्रार्थना के लिये जगाते कि सुलाते? तो उसने बताया कि देखिए, मैं तो हूँ पाप ही। लेकिन दो बरस पहले तुम्हारी नींद लग गई थी, समय पर नहीं उठ पाए थे, तो जब नींद खुली तो तुम इतने व्याकुल होकर रोये कि भगवान के बिलकुल पास पहुँच गये। मुझे लगा कि आज भी तुम उतने ही व्याकुल हो जाओगे, तो भगवान की गोद में पहुँच जाओगे। इसलिये अच्छा है कि जगा दें, यंत्र की तरह यह पूजा पाठ कर ले, पर भगवान के पास तो न जाने पावे।

तो रावण पूजा की सुविधा इसीलिये देता है कि भई, ठीक है, पूजा-पाठ करते रहो, हम तुम्हें नहीं रोकेंगे, तुम्हारे लिये मन्दिर यहीं बनवा देते हैं, राम के पास जाने की क्या आवश्यकता है, यहीं रहो। तब संत आकर उस भ्रम को दूर करता है, वह विभीषण को भाई कहकर पुकारता है –

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। ५/७/४

तो ये दो सूत्र थे। तुम किस नगर में बैठकर पूजा-पाठ कर रहे हो? किसने तुम्हें यह सुविधा दी है? वह जो सुविधा दे रहा है, क्यों दे रहा है। अगर तुम धर्म का पालन करते हो, तो सच में तुम्हारा भाई कौन है? यह सूत्र ही उनको आगे की ओर बढ़ाता है। इसके बाद की चर्चा कल करेंगे। आज इतना ही। **(क्रमशः)**

मितव्ययी बनें

स्वामी तपस्यानन्द जी रामकृष्ण संघ के सह-संघाध्यक्ष थे। वे स्वामी ब्रह्मानन्दजी के शिष्य तथा प्रखर विद्वान एवं दैवी गुणों से सम्पन्न थे। उच्च विचार और सादगीपूर्ण जीवन – यह उनके प्रत्येक कार्य में परिलक्षित होता था।

श्रीरामकृष्ण देव कहते थे कि गृहस्थ लोग बड़े परिश्रम से धनोपार्जन कर आश्रम को दान देते हैं। उनके दिए गए दान का सदुपयोग होना चाहिए और उसे व्यर्थ नहीं खर्च करना चाहिए। स्वामी तपस्यानन्द जी महाराज ने श्रीरामकृष्ण देव का यह उपदेश अपने पूरे जीवन में भलीभाँति आचरित किया था। महाराज तब रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष और रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-संघाध्यक्ष थे। उनके आध्यात्मिक जीवन से प्रेरित होकर अनेक नवयुवक चेन्नई मठ में ब्रह्मचारी के रूप में सम्मिलित होते थे। महाराज की नवागत ब्रह्मचारियों के आध्यात्मिक जीवन पर विशेष दृष्टि रहती थी और आवश्यकता पड़ने पर वे उन पर कठोर अनुशासन भी करते थे।

एकबार आश्रम का चौकीदार छुट्टी पर गया हुआ था । इसलिए एक ब्रह्मचारी महाराज को सन्ध्या आरती के पहले ६.१० बजे आश्रम के सभी बल्ब जलाने का काम दिया गया था। । ब्रह्मचारी महाराजजी ने पहले दिन शाम ५.५० बजे बल्ब जला दिए। अगले दिन भी उन्होंने उसी समय बल्ब जलाए। स्वामी तपस्यानन्दजी महाराज ने पहले दिन तो ब्रह्मचारी जी से कुछ कहा नहीं, किन्तु दूसरे दिन भी जब ऐसा हुआ, तो उन्होंने ब्रह्मचारीजी को बुलाया। उन्होंने ब्रह्मचारीजी से पूछा कि वे क्यों सन्ध्या आरती के बहुत पहले ही बल्ब जला देते हैं। ब्रह्मचारीजी ने कहा कि उन्हें ऐसा करने के लिए कहा गया है। तब तपस्यानन्द जी महाराज ने कठोर शब्दों में कहा, ''प्रतिदिन शाम को ६.१० बजे बल्ब जलाए जाते थे और तुम ५.५० बजे जला देते हो। यदि अगले महीने बिजली का बिल अधिक आया, तो अपनी लापरवाही के कारण तुम्हें ही उसका भुगतान करना पड़ेगा।'' ब्रह्मचारीजी के लिए महाराज की इतनी डाँट पर्याप्त थी। उन्हें यह शिक्षा भी मिली कि आश्रम की प्रत्येक वस्तु के उपयोग में मितव्ययिता का पालन करना चाहिए। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (५८)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२२-१२-१९६०

महाराज – तुम अभी नए आए हो। कुछ बातें बता देता हूँ। ध्यान से सुनो, यदि साधु-जीवन ठीक रखना चाहते हो, तो सामर्थ्यानुसार साधना करने का प्रयास करना। साधना के अभाव के कारण ही हम लोगों की ऐसी दुर्गति है। साधन-भजन, रात में नियमित लगभग ९-१० बजे तक शयन और प्रातः ३ बजे जागना होगा। इसकी व्यवस्था कर लेनी होगी। कर्म में नाम-यश पाने की चेष्टा मत करना। नहीं तो, वह तुम्हारा विनाश कर देगा। मूर्ख की तरह चुपचाप रहते हुए अपना कार्य करते जाना। किन्तु देखना कि तमोगुण में पड़कर कहीं कर्म की उपेक्षा न हो जाए। सतोगुण नहीं आने तक कार्य करना अच्छा है। निःस्वार्थ भाव से परोपकार करने पर भी, देशसेवा की भावना से कार्य करने पर देश का परम कल्याण होगा, तुम्हारी भी उन्नति होगी। यह हुआ नैष्ठिक ब्रह्मचारी का जीवन। हम लोग इसकी भी सादर अभ्यर्थना करते हैं, किन्तु संन्यासी का जीवन अलग है – उसे इस जगत के नाम-यश, सुख-दुख से पार जाना होगा। कई लोग परोपकार के नाम पर अपना निजी उद्देश्य चरितार्थ करते हैं, उससे उनकी ऊर्ध्वगति बाधित होती है तथा संघ की भी क्षति होती है, किन्तु समाज का कुछ कल्याण होता है। इस तरह चलना होगा, जिससे लोक-प्रदर्शन का भाव न आए। किसी को भी कष्ट न देकर किसी प्रकार साधन-भजन का अनुकूल परिवेश बना लेना। बात कहने के पहले सोच लेना।

सुषुप्ति अवस्था क्या है, जानते हो? इसे अच्छी तरह समझ लो। मैं पहले सोचता था, तब लगता था कि सुषुप्ति में मैं अज्ञान से आवृत्त रहता हूँ। किन्तु इतने दिनों बाद समझ पाया कि यह सुषुप्ति मन और प्राण इन दोनों को सक्रिय रखती है। सुषुप्ति के समय मन सिमटकर बुद्धि में लीन हो जाता है। अर्थात् मन कुछ भी देख नहीं पाता। बुद्धि निष्क्रिय होकर पड़ी रहती है और मैं बुद्धि के साथ एकाकार हो जाता हूँ। उस समय मैं आवृत्त नहीं होता, मैं जैसा हूँ, वैसा ही रहता हूँ, मैं आवरण को आलोकित करता हूँ।

(एक नवागत ब्रह्मचारी थोड़ी अधिक बातें करते हैं। किसी ने कहा कि वह साधु होने के योग्य नहीं है।)

महाराज – शुद्ध नहीं है, इसीलिए तो संघ में आया है। थोड़ा स्नेह-प्रेम, थोड़ा मार्गदर्शन पाकर वह ठीक हो जायेगा। किन्तु संन्यासी के आश्रम में धन-सम्पत्ति, स्त्री और नाम-यश के लिये अनुचित कर्म को सहन करना ठीक नहीं है। जो लोग ये सब नहीं जानते, उनका संघ में आना उचित नहीं है। वह किस दिन, कौन सा अनुचित कर्म कर बैठे, कुछ निश्चित नहीं।

२७-१२-१९६०

महाराज – साधक की तीन तरह की अवस्था होती है – १. जो कर्म छोड़कर नहीं रह पाते। २. जो कर्म छोड़कर रह सकते हैं। ३. जिन्हें कर्म उत्तेजित नहीं कर पाता।

१. **'आरुरुक्षोः मुनिः'** – इसमें साधक योग में स्थित होने की चेष्टा करता है। २. **'योगारूढ'** – ध्यान में बैठने हेतु मन तैयार हो रहा है। ३. योगारूढ होकर ध्यान करते-करते सिद्ध अवस्था हो गई है।

संसार में कई प्रकार के लोग होते हैं – १. जिन्हें काम-कांचन की आवश्यकता है। २. जो काम-कांचन छोड़कर रह सकते हैं, किन्तु समय आने पर विचलित हो जाते हैं। ३. तीसरे प्रकार के ज्ञानी लोग हैं – वे कभी भी विचलित नहीं होते। किन्तु साधना में निष्ठावान होना होगा। इसमें पाखण्ड नहीं चलता।

३०-१२-१९६०

टहलते-टहलते महाराज अचानक एक जगह खड़े हो

गए। सेवक से बोले, "देखो, देखो वह बाड़ा देखो। कैसे सब उलटा-पुलटा काम किया है। क्या जैसे-तैसे काम करने से आध्यात्मिक जीवन सफल होता है? यह जीवन एक कला है। ठाकुर और उनके शिष्यों के जीवन में मानो कलात्मकता थी।

भागवत में कथा है – राजा अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं। मुनि ने जाकर उनसे पूछा – अश्वमेध यज्ञ करने से क्या होगा? राजा ने कहा – क्यों, स्वर्ग-सुख भोग करूँगा। मुनि ने कहा – महाराज, शूकर-शूकरी जब विष्ठा खाते हैं, जब मैथुन करते हैं, तब उनके भोग का जो सुख है, क्या स्वर्ग-सुख के भोग और उस सुख-भोग में कोई अन्तर है?

आज एक घटना देखी। कई छोटी-छोटी चींटियाँ एक गड्ढे में रहती थीं। कई दिनों से एक बड़ा चींटा उधर विचरण कर रह था। वह आकर छोटी चींटियों के घर पर कब्जा करके अपने दल के चींटों को ले आया। तब छोटी चीटियाँ पास के अन्य दो बिलों को खोजकर वहाँ रहने लगीं। वे सब पंक्तिबद्ध होकर आई थीं। तभी एक बड़ा चींटा उनकी पंक्ति में जैसे ही घुसने लगा, त्योंही वह टप से मिट्टी में गिर पड़ा, लगता है छोटी चींटियों ने उसे काट लिया था।

देखो, यही तो संसार है – अमेरिका, चीन, जापान सर्वत्र यही स्थिति है। प्रत्येक का एक-एक संसार है। इस विराट घर में एक तुम्हारा घर है, एक हमारा घर है, फिर तुम्हारा–हमारा कक्ष है, इस घर का, इस आश्रम का, संघ का एक संसार है। जैसे संन्यासी का है, वैसे ही जज का, नौकर का, चपरासी का, क्लर्क का, सबका अलग-अलग संसार है। कैसी विचित्र परिस्थिति है !

प्रभु की सेवा-भक्तिपरक पुस्तकें पढ़ना, इन सबमें मन को लगाये रखने से ठीक रहोगे। तुम्हारी उन्नति होगी। किन्तु एक बात है, यदि आन्तरिक भाव से ये सब लेकर रहो, तो ठाकुर को ही लेकर रहना हुआ। फिर ठाकुर में ही तो सब कुछ है। ठाकुर को लेकर रहने से ही, वे क्या हैं, इसे जान सकोगे। योग तो होगा ही, कर्म स्वयं ही होने लगेगा, उनकी प्रसन्नता के लिये कर्म करना।

हमारे स्वामी हितानन्द जी सतत ठाकुर-सेवा कर रहे हैं। इधर पर्याप्त स्वाध्याय भी करते हैं। अन्त में उनकी मुक्ति होगी। उन्हें देखकर कोई बिना प्रशंसा किए नहीं रह सकेगा। गंगाधर कामारपुकुर में ठाकुर के भाव में तन्मय है। उसकी साधना ठीक हो रही है, इसका परीक्षण उसके स्वाध्याय के प्रति प्रेम से होता है। वास्तव में मतवाला हो गया है। गीता में तो ठाकुर की ही वाणी है। एक बात को कितने प्रकार से घुमा-फिराकर विभिन्न दृष्टिकोण से, विविध रूप से सुन्दर सजाकर कहने की चेष्टा की गई है। मानो उन्मत्त हो गए हैं, चीत्कार करके कह रहे हैं ! जब गीता की इस व्याकुलता का अनुभव करोगे, तब समझोगे, गीता का रसास्वादन कर रहा हूँ। गंगाधर ठीक मार्ग पर चल रहा है। **(क्रमशः)**

राष्ट्र-वीरपुत्र उठो !

देश है पुकारता तू सो रहा जवान है ।
राष्ट्र-वीरपुत्र उठो लक्ष्य तव महान है ।।

तेरे सिवा कौन है जो सबके पास जायेगा,
विषमयी कुसंस्कृति से विश्व को बचायेगा ।
सब जगह आतंक का उठ रहा तूफान है ।।
राष्ट्र-वीरपुत्र उठो ...

संकटों के मार्ग को तुमने दी चुनौतियाँ,
दुख-कष्ट झेलकर पायी बड़ी उपलब्धियाँ ।
स्वाभिमान शौर्य का फूँक शंखनाद है ।
राष्ट्र-वीरपुत्र उठो ...

मानवों में प्रेमधार कौन जो बहायेगा,
टूट रहे समाज, घर, देश को बचायेगा ।
शान्ति-प्रेम-संस्कृति देश की महान है ।
राष्ट्र-वीरपुत्र उठो ...

श्रीमाँ सारदा देवी : निराकार विचार से साकार शब्द तक

प्राणनाथ पंकज, चंडीगढ़

या सारदैव सकलागमबोधरूपा
श्रीरामकृष्ण परमहंस पतिव्रताऽभूत्।
सा सारदामणिरिति प्रथिताभिधाना
तां मातरं प्रणमत प्रिय भक्तवर्य।।

''समस्त विद्याओं की बोधस्वरूपिणी देवी सारदा, जो श्रीरामकृष्ण परमहंस की पतिव्रता सहधर्मिणी के रूप में अवतीर्ण हुई, वे ही सारदामणि के नाम से प्रख्यात हैं।''

श्रीमाँ की जीवन-लीला के प्रसंगों से 'विवेक-ज्योति' के पाठक सुपरिचित ही हैं। इस निबन्ध में हम उपरोक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रीमाँ के स्वरूप का सैद्धान्तिक विवेचन करने का यत्किञ्चित् प्रयास करेंगे।

१. या सारदैव सकलागमबोधरूपा

देवी सरस्वती समस्त आध्यात्मिक और लौकिक विद्याओं के ज्ञान की साक्षात् मूर्ति हैं। उन्हें सावित्री, वेदमाता, गायत्री, शारदा नामों से भी जाना जाता है। साधारण अर्थों में आगम शब्द का अभिप्राय दर्शन-शास्त्र, स्मृतियाँ, पुराण, तंत्रशास्त्र इत्यादि धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य से है। पर आगम का शाब्दिक अर्थ है, 'आना', 'पहुँचना'। कोशग्रन्थों के अनुसार आगम में उन सब विद्याओं का अन्तर्भाव है, जो हमें परम्परा से ज्ञान के रूप में प्राप्त होती हैं। इस प्रकार, सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय भी, जिसे विशिष्ट अर्थों में निगम कहा जाता है, आगम के व्यापक अर्थ में सम्मिलित है। इतना ही नहीं, आगम के अन्तर्गत लौकिक ज्ञान-विज्ञान भी सम्मिलित हैं।[१] इस प्रकार शारदा-सरस्वती, जिन्हें वाणी और प्रज्ञान विशेषणों से भी अभिहित किया जाता है, सभी विद्याओं की जननी, अधिष्ठात्री देवी हैं।

वेद को हम ब्रह्म कहते हैं। शब्द को भी ब्रह्म कहते हैं। विश्व धर्म-संसद में १९ सितम्बर, १८९३ को 'हिन्दू-धर्म' पर दिए गए अपने भाषण में स्वामी विवेकानन्द ने वेदों को ईश्वर प्रत्यादेश कहते हुए, उन्हें अनादि और अनन्त बताया था।[२] इसी प्रकार हम शब्द को भी ब्रह्म कहते हैं। बाइबिल में भी शब्द को ईश्वर की संज्ञा दी गई है।[३]

जैसे ब्रह्म निराकार है और साकार भी, वैसे ही ज्ञान के आदि स्रोत के रूप में वेद के भी निराकार और साकार दोनों रूप हैं। जब एक भाव अथवा विचार के रूप में ऋषि के अंतस्तल में मंत्र अवतरित होता है, तब वह निराकार रहता है। जब वह भाव, वह विचार, मौखिक अथवा लिखित रूप में शब्द बन कर व्यक्त होता है, तो वह साकार रूप ग्रहण करता है। वह हमारे आँख, कान और वाणी का विषय हो जाता है। लिखते समय, पुस्तक पढ़ते समय हम उसका स्पर्श भी करते हैं।

क्रौंच पक्षी को जब व्याध ने बाण मार कर भूमि पर गिरा दिया था, तब उस दृश्य को देखते हुए आदिकवि वाल्मीकि भावविह्वल हो उठे थे। व्याकुलता का वह भाव मूल रूप में निराकार था। पर जब बरबस उनके मुख से उनका शोक, श्लोक बनकर निकला, तो वह साकार हो गया – **शोकः श्लोकत्वमागतः** और आदिकवि स्वयं विस्मित हो कर कह उठे – **किमिदं व्याहृतं मया** – मैंने यह क्या कह दिया! ऐसे ही सभी प्रकार का ज्ञान, विज्ञान, संगीत, कला आदि निराकार से साकार रूप ग्रहण करता है।

सरस्वती इस निराकार ब्रह्म और साकार शब्द, दोनों प्रकार के बोध की अधिष्ठात्री हैं। माँ सारदा साक्षात् बोधरूपा सारदा ही हैं।

२. श्रीरामकृष्ण परमहंस पतिव्रताऽभूत्

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे अजन्मा हैं, अव्यय हैं, समस्त प्राणियों के ईश्वर हैं। तथापि वे अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर अपनी माया द्वारा अवतरित होते हैं। वे यह भी कहते हैं कि उनके जन्म और कर्म दिव्य हैं,

और जो इसे तात्त्विक रूप से समझ लेते हैं, वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर उन्हें प्राप्त होते हैं।[४]

रामचरितमानस में मनु-शतरूपा के प्रसंग में उनके तप से प्रसन्न होकर श्रीराम उन्हें वरदान देने के लिए प्रकट होते हैं, तब भगवती सीता उनके पार्श्व में होती हैं। श्रीराम मनु-शतरूपा से वर माँगने के लिये कहते हैं, तो मनु उनसे उनके जैसा पुत्र माँगते हैं। भगवान कहते हैं कि वे भला अपने जैसा तो खोजने कहाँ जाएँ, वे स्वयं ही उनके पुत्र बन कर आएँगे। फिर, मनु-शतरूपा के माँगे बिना वे कहते हैं कि यह जो आदिशक्ति हैं, जिनसे जगत की सृष्टि हुई है, यह मेरी माया सीता भी अवतरित होंगी और इस प्रकार मैं आपका मनोरथ पूरा करूँगा। भक्तों को सुख देने के लिये मैं जो लीला करूँगा, उसे सुनकर सौभाग्यशाली मनुष्य भवसागर से पार हो जाएँगे।[५]

भगवान के अवतार असंख्य हैं। उनकी लीलाएँ भी अनन्त हैं। अपने नित्य-निराकर स्वरूप में जो ब्रह्म है, जब वह लीला के लिये पृथ्वी पर अवतरित होता है, तब उसकी प्रकृति, उसकी माया का साहचर्य अनिवार्य होता है। इस प्रकार जब श्रीरामकृष्ण देव धराधाम पर आते हैं, तब उनकी शक्तिरूपिणी, उनकी प्रकृति सारदामणि[६] के रूप में, श्रीराम के भक्त श्रीरामचन्द्र मुखोपाध्याय तथा श्रीमती श्यामासुन्दरी देवी के यहाँ अवतरित होती हैं। जिस प्रकार ठाकुर के जन्म का पूर्वाभास उनके माता-पिता को हो जाता है, उसी प्रकार माँ के अवतार का पूर्व परिचय उनके माता-पिता को होता है। जब ठाकुर के घर वाले उनके विवाह के योग्य कन्या को ढूँढ़ रहे थे, तब ठाकुर ही उन्हें माँ के सम्बन्ध में बतलाते हैं। इसी तरह अपने शैशव में जब माँ ठाकुर को देखती हैं और उनसे उनके वर के सम्बन्ध में पूछा जाता है, तो वे ठाकुर की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष के, माया और ब्रह्म के, भगवती और भगवान के, श्रीसारदामणि और श्रीरामकृष्ण के साहचर्य की भूमिका बनती है और उसकी निष्पत्ति होती है। कामारपुकुर के रामकृष्ण और जयरामबाटी की सारदा का परिणय होता है, जैसे अयोध्या के राम और मिथिला की जानकी का।

ठाकुर ने माँ के सम्बन्ध में कहा था कि वे उनकी शक्ति हैं, यह भी कहा था कि वे ज्ञानरूपिणी सारदा हैं। निराकार की बात करें तो श्रीमाँ, श्रीरामकृष्ण में ऐसे ही व्याप्त थीं, जैसे अग्नि में उसकी दाहिका शक्ति।[७] एक अर्थ में ठाकुर ने माँ की षोडशी पूजा उनके वास्तविक स्वरूप को जगत में प्रतिष्ठित करने के लिए ही की थी। ऐसा भी नहीं कि माँ अपने स्वरूप को जानती नहीं

थीं, उसकी चर्चा वे यदा-कदा ही करती थीं और स्वरूप का प्राकट्य तो लगभग कभी नहीं। श्रीरामकृष्ण ने कहा था कि वे इस बार प्रच्छन्न रूप में आई हैं। उस प्रच्छन्न रूप में वे साधारण गृहस्थ की तरह निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वाह सभी अभावों तथा कठिनाइयों के बीच करती थीं।

स्वामी अभेदानन्द ने माँ को 'रामकृष्णगतप्राणा' कहा है। ठाकुर का नाम श्रवण करना उन्हें अत्यन्त प्रिय है तथा उनका व्यक्तित्व ठाकुर के भाव में ही रँगा हुआ है।[८] माँ ने अद्वितीय आजीवन पातिव्रत-धर्म का पालन किया। ठाकुर ने भौतिक शरीर का त्याग किया, किन्तु माँ के लिए वे कभी गए ही नहीं। वे उनसे बात करतीं, उनके आदेश सुनतीं और उनका पालन करती थीं। उन्हें वे नित्य जो भोग लगाती थीं, वह किसी चित्र को प्रतीकात्मक रूप से भोग लगाना नहीं था, अपितु वे उन्हें अपने समक्ष साकार उपस्थित देखकर नैवेद्य समर्पित करती थीं।

ठाकुर के जीवनकाल में तो वे न केवल उनकी आज्ञा का पालन करती थीं, अपितु परदे में रहते हुए देखती रहतीं कि उन्हें कब किस वस्तु की आवश्यकता है।

ठाकुर के देहत्याग के बाद माँ ने मानसिक शान्ति के लिए अत्यन्त दुष्कर पञ्चाग्नि-तप किया था, उसका भी अन्यत्र उदाहरण मिल सकता है क्या? माँ ने स्वयं कहा था, उनके चारों ओर गोबर के उपलों की धधकती अग्नि थी। गर्मी की ऋतु में नीलाम्बर के घर की छत पर, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, सात दिन उन्होंने यह तप किया था। माँ कहती हैं कि जैसे पार्वती ने भगवान शंकर की प्राप्ति के लिए अग्नि-साधना की थी, वैसे ही मैंने भी की।

जब उनसे उनकी एक अन्तरंग शिष्या ने जानना चाहा कि इतनी कठिन साधना क्यों की, तो उन्होंने बताया था,

यह मैंने तुम लोगों के लिये किया था। जब हम इस वृत्तान्त को पढ़ते हैं तो हमें श्रीकृष्ण के वाक्य स्मरण हो आते हैं – हे पार्थ ! मेरे लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं है, फिर भी मैं लोकसंग्रहार्थ कर्म करता हूँ। विद्वान लोग अनासक्त भाव से लोकशिक्षा के लिए कर्म करते हैं, जैसे जनक आदि।

यदि मैं कर्म करना छोड़ दूँ, तो संसार नष्ट हो जाएगा। श्रेष्ठ लोग जैसा आचरण करते हैं, उन्हें देखकर अन्य जन भी वैसा करते हैं।[९] श्रीमाँ ने परमहंस श्रीरामकृष्ण की पतिव्रता पत्नी के रूप में, ठाकुर के लक्ष्यप्राप्ति में सहायिका बनकर, उनकी प्रकृति के रूप में पातिव्रत-धर्म के सर्वोच्च आदर्श का ही पालन नहीं किया, अपितु एक जटिल गृहस्थी की भी आदर्श रूप से देखभाल की। उन्होंने स्वजन-सम्बन्धियों और ठाकुर के शिष्यों और भक्तों की प्रत्येक आवश्यकता का ध्यान रखा।

३. सा सारदामणिरिति प्रथिताभिधाना

वे सारदामणि के नाम से प्रख्यात हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शारदा सरस्वती, वेदस्वरूपिणी हैं तथा वे सब विद्याओं और कलाओं की, ज्ञान-विज्ञान की, अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीरामकृष्ण ने कहा कि सारदामणि साक्षात् ज्ञानदायिनी सरस्वती हैं। अब उन सभी विद्याओं का सार हमें प्रदान करने इस धराधाम पर उनका अवतरण हुआ है। जैसे द्वापर युग में श्रीकृष्ण ने सब उपनिषदों के सार रूप में गीता का ज्ञान दिया था –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

वैसे ही हमारे लिये श्रीमाँ की वाणी है। वैसे तो श्रीरामकृष्ण संघ के प्रकाशन केन्द्रों द्वारा ठाकुर, माँ और स्वामीजी तथा उनकी शिष्य-परम्परा के जीवन और संदेश की जानकारी देनेवाली पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध हैं, पर यदि माँ की वाणी को सार रूप में, सरल शब्दों में समझना हो, तो 'श्रीमाँ सारदा देवी की अमृतवाणी' उपलब्ध है। इसमें न केवल ठाकुर-माँ-स्वामीजी के सिद्धान्तों का छोटे वाक्यों में सार उपलब्ध है,[१०] अपितु, इसमें लौकिक एवं आध्यात्मिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक तत्त्व भी समाविष्ट हैं। यदि हम विस्तृत साहित्य का अवलोकन और ग्रहण करने में कठिनाई का अनुभव करें या समयाभाव हो, तो इस छोटी-सी पुस्तिका में संकलित माँ की अमृतवाणी का जो 'सर्वशास्त्रमयी' है, सुविधानुसार अथवा नियमित रूप से पाठ कर सकते हैं।

४. तां मातरं प्रणमत प्रिय भक्तवर्य

जगज्जननी सारदा ! वे माँ हैं, सबकी माँ। वे कहती हैं, 'ऐसे-ऐसे लोग आते हैं कि ऐसा कोई कर्म नहीं जो उन्होंने न किया हो। आकर मुझे 'माँ' कहकर पुकारते हैं, तो मैं सब भूलकर स्वयं को खो बैठती हूँ – जो जिनके योग्य नहीं, वह यहाँ से उससे भी अधिक ले जाता है।'' दुर्जन-सज्जन, गृहस्थ-संन्यासी, हिन्दू-मुसलमान-ईसाई – वे सबकी माँ हैं। जीव-जन्तुओं की भी वे माँ हैं। माँ ने कहा है, ''तुमलोगों के पैरों में काँटा भी चुभे तो मेरे सीने में शूल चुभता है''।[११] अमजद हो या स्वामी सारदानन्द, गिरीश घोष हों या रासबिहारी महाराज, सभी की वे माँ हैं।

गिरीश घोष ने एक बार श्रीमाँ से पूछा, ''तुम कैसी माँ हो?'' तुरन्त ही श्रीमाँ ने उत्तर दिया, ''मैं सच्ची माँ हूँ। केवल गुरुपत्नी नहीं, मुँहबोली माँ नहीं, कहने की माँ नहीं, सचमुच की माँ हूँ।''[१२]

ठाकुर से जब माँ ने पूछा था कि वे उनके साथ क्यों नहीं जा सकतीं, तो ठाकुर ने उत्तर दिया था कि माँ को यहाँ रहकर अभी बहुत काम करना है, उनका (ठाकुर का) अधूरा काम भी पूरा करना है और इसी आदेश का पालन करते हुए माँ ठाकुर द्वारा अपनी भौतिक लीला का संवरण किए जाने के बाद भी यहाँ रहीं। ठाकुर ने माँ से कहा था, ''तुम्हारी अनेकानेक संतानें होंगी।'' सचमुच उनके जीवनकाल में ही नहीं, परमधाम सिधारने के पश्चात्, आज भी, उनकी संतानों में वृद्धि हो रही है। भौतिकता के इस घोर वातावरण में संन्यासी और गृहस्थ-भक्त देश-विदेश में श्रीमाँ की वाणी का प्रचार-प्रसार कर शान्ति प्रदान करने का प्रयास कर रहे हैं। जो शारदास्वरूपिणी, सभी विद्याओं की साररूपिणी माँ सारदा हैं, जिनके प्रसाद से हम सब को सब शास्त्रों का सार सरलता से प्राप्त हो रहा है, – जो श्रीरामकृष्ण की शक्ति, उनकी प्रकृति हैं, उन माँ के चरणों में उनके इस आश्वासन को स्मरण करते हुए, हम उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं – ''बेटा ! हमेशा यह जानना कि ठाकुर तुम्हारे साथ हैं, मैं हूँ – मुझ माँ के रहते भय क्या?'' ○○○

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

दीन देख सबहिं हँसै, ऐसी दसा हमारी

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

एक बार राजा भोज के दरबार में एक गरीब ब्राह्मण आया। राजा ने पूछा, 'कुत: आगम्यते विप्र' (विप्रवर, आप कहा से आ रहे हैं?)

ब्राह्मण ने जवाब दिया, 'कैलासादागतोस्म्यहम्' (कैलास पर्वत से आ रहा हूँ।)

राजा ने पूछा, 'शिव: कुशलम् अस्ति' (शिवजी कुशल तो हैं, न?)

'किं पृच्छसि शिवोमृत:?' (ब्राह्मण ने जवाब दिया, उनकी तो मृत्यु हो गई।)

राजा जब ब्राह्मण की ओर आश्चर्य की मुद्रा में देखने लगे, तो ब्राह्मण ने कहा,

''अर्धं दानववैरिणा गिरिजयाप्यर्धं हरस्याहृतं
देवेत्थं भुवनत्रयं स्मरहराभावे समुन्मीलति।
गंगा सागरमम्बरं शशिकला शेषश्चपृथ्वीतलं
सर्वज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत् त्वां मां च भिक्षाटनम्।।

(उनका आधा शरीर तो भगवान विष्णु ने (हरिहर रूप में) और आधा शरीर पार्वतीजी ने (अर्धनारीश्वर रूप में) ले लिया। इससे शिवजी त्रिलोक से अन्तर्धान हो गये। उनकी सम्पत्ति भी बँट गई – गंगा समुद्र में विलीन हो गई, चन्द्रमा की कला आकाश पहुँच गई, नाग पाताल चला गया, सर्वज्ञता और प्रभुता आपको मिल गयी। रह गया केवल भिक्षा मांगना, जो मुझ दुर्भाग्यशाली के गले पड़ा।)

राजा ने कवि का काव्यमर्म समझ लिया। उन्होंने कहा, ''आपकी बुद्धिमता अद्भुत है।'' उन्होंने एक राजकर्मचारी से ब्राह्मण को एक भैंस देने का आदेश दिया। कर्मचारी कृपण था। एक बूढ़ी दुबली भैंस लाकर उसने ब्राह्मण को दे दी। ब्राह्मण ने तुरन्त जाकर अपना बायाँ कान भैंस के मुँह के पास लगाया और थोड़ी देर बाद वापस आ गया। राजा ने पूछा, ''भैंस के पास क्यों गये थे?'' ब्राह्मण ने उत्तर दिया, ''भैंस जब मेरी ओर देखने लगी, तो मैंने समझ लिया कि वह मुझसे कुछ कहना चाहती है। उसने कहा –

भर्ता मे महिषासुर: कृतयुगे देव्या भवान्याहत-
स्तस्मात्तद्दिनतो भवामि विधवा वैधव्यधर्मा ह्यहम्।
दन्ता मे गलिता: कुचा विगलिता भग्नं विषाणद्वयं
वृद्धायां मयि गर्भसम्भवविधिं पृच्छन्न किं लज्जसे।।

(महिषासुर के मारे जाने से मैं विधवा हो गई। तबसे मैं विधवा-धर्म का पालन कर रही हूँ। अब तो मेरे दाँत टूट गये, थन लटक रहे हैं और दोनों सींग भी भग्न हो गए। ऐसी हालत में मुझ बुढ़िया से गर्भस्थ होने की बात पूछते समय क्या तुझे लज्जा नहीं आती?)

राजा ने जब भैंस की ओर देखा, तो ब्राह्मण की बात समझ में आ गई। उन्होंने राजकर्मचारी को बुलाकर कहा, ''दुबली बूढ़ी भैंस देते समय तुम मुस्करा रहे थे। तुम्हारे इस कृत्य ने मुझे लज्जित कर दिया।'' उन्होंने उस कर्मचारी को दंडित करने का आदेश दिया और ब्राह्मण को स्वस्थ दुधारू भैंस तथा बहुत-सा द्रव्य देकर विदा किया।

दरिद्रता बड़ी दुखदायिनी होती है। इससे मुक्ति का कोई उपाय न सूझने पर दरिद्र व्यक्ति को असहाय होकर याचक बनना पड़ता है। सहृदयी व्यक्ति दरिद्रता की भीषणता को भाँप लेता है और दरिद्रनारायण का दुख दूर करना अपना परम धर्म समझता है। ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

सन्दर्भ-संकेत – १. विस्तृत अर्थों के लिये देखें, मोनिअर विलियम्स की संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी, 'Agama' के अन्तर्गत। वी. एस. आप्टे की संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी भी

२. विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खंड, पृष्ठ ६ (मायावती मेमोरियल संस्करण, २००९, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, मूल अंग्रेजी से लेखक द्वारा अनुवादित)

३. जॉन, १.२

४. भगवद्गीता ४.६,९,

५. रामचरितमानस १.१४८, १४९, १५०;

६. श्रीमाँ की माताजी उनका नाम क्षेमकरी रखना चाहती थीं, पर उनकी बहन के कहने पर उन्होंने उनका नाम सारदामणि रखा था। (देखें, स्वामी चेतनानंद: श्री सारदादेवी एंड हर डिवाइन प्ले, पाद टिप्पणी पृष्ठ २९, वेदान्त सोसायटी, सैंट लुई)

७. स्वामी सारदानन्द : यथाग्रेर्दाहिकाशक्ति: रामकृष्णे स्थिता हि या।
सर्वविद्यास्वरूपां तां सारदां प्रणमाम्यहम्।।

८. स्वामी अभेदानन्द : रामकृष्णगतप्राणा तन्नामश्रवणप्रियाम्।
तद्भावरञ्जिताकारां प्रणमामि मुहुर्मुहु:।।

९. भगवद्गीता ३.२०,२१,२२,२४

१०.'टीचिंग्स आफ श्रीसारदादेवी द होली मदर' का हिन्दी अनुवाद, अद्वैत आश्रम, कोलकाता

११. श्रीमाँ सारदा देवी की अमृतवाणी, पृष्ठ १०६, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, अप्रैल २००८

१२. वही, पृष्ठ १०७

१३. वही, पृष्ठ १०७

आध्यात्मिक जिज्ञासा (२०)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – महाराज इस संघ में रहकर हमलोग जो करते हैं, वह तो बँधे-बँधाये जैसा लगता है।

महाराज – संघ को छोड़कर हमलोगों के लिये अन्य कोई आश्रय नहीं है, इसीलिए रहते हैं। संघ हमारे लिये अनुकूल है, इसलिए रहते हैं। प्रतिकूल होने पर नहीं रहते।

– किन्तु यहाँ रहना तो एक ढर्रे जैसा हो रहा है।

महाराज – ठीक ही, एक ढर्रे जैसा हो रहा है। जो ध्यान कर रहा है, वह नित्यकर्म जैसा है, जो जप कर रहा है, वह भी नित्य दिनचर्या जैसे कर रहा है। इस नित्यकर्म को छोड़कर दूसरा क्या उपाय है? जब तक मन में तीव्र वैराग्य नहीं होता, तभी तक एक ढर्रे जैसा है। जब तीव्र वैराग्य होता है, तब हम आगे बढ़ते हैं। नहीं तो, यह 'बनत बनत बनि जाई' जैसा है।

– हमलोगों में ऐसी भावना है, उसे आपको बताया। इस संघ को ठाकुर, माँ, स्वामीजी और ठाकुर के साक्षात् शिष्यों ने प्रारम्भ किया। इस युग में इसकी एक धारा है। मान लीजिए, मैं चेष्टा करूँ या न करूँ, हम लोग इस धारा में आ गये हैं, इसलिए यह हमें खींचकर ले जायेगी। मैं अपना यह विचार बता रहा हूँ। इसके बारे में ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में रहते समय सोच रहा था। पहला – चूँकि यहाँ एक धारा या स्रोत प्रवाहित हो रहा है, इसलिए मैं प्रयास करूँ या न करूँ, वह हमें खींच कर ले जायेगी। दूसरा है – आध्यात्मिक जीवन साधना-सापेक्ष होता है। इस संघ में सबके साथ हूँ, तो प्रगति होगी ही, ऐसा नहीं है। यदि मैं प्रयास करूँ, साधना करूँ, तो व्यक्तिगत प्रगति हो सकती है। क्योंकि संघ में रहने पर भी व्यक्तिगत प्रयास पर व्यक्तिगत प्रगति निर्भर करती है।

महाराज – विचार करके देखना होगा। यह संघ हमलोगों का है, हम उसकी थोड़ी सहायता कर रहे हैं। यद्यपि हमलोग खा-पी रहे हैं, पड़े हुए हैं, विश्राम कर रहे हैं या दो फूल चढ़ा रहे हैं या कोई काम कर रहे हैं, केवल इससे तो नहीं होगा।

– नहीं, उन लोगों का प्रश्न था कि सम्पूर्ण रूप से संघ यदि थोड़ा और अनुकूल होता, तो साधन-भजन में सहायक होता, किन्तु मुझे लगता है कि संघ हमेशा हमारे मनोनुकूल नहीं होगा। किन्तु जितना अनुकूल है, उसमें ही हमें प्रयास करना होगा।

महाराज – हाँ, जितना सम्भव है, उतना प्रयास करते जाना होगा।

– महाराज ! एक बार आपने उदाहरण दिया था कि महापुरुष महाराज ने कहा था – 'यदि मेरी इच्छा हो, तो मैं अभी इस आम के पेड़ को मुक्त कर सकता हूँ।''

महाराज – यह उनका विचार है। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से कहा है। यहाँ ऐसी बात नहीं है ।

– फिर उन्होंने ही कहा है – ''इस संघ में ठीक कुत्ते की तरह पड़े रहना होगा।''

महाराज – कुत्ते के समान संघ में पड़े रहने का अर्थ है, इसमें अविश्वास मत करना। यही बात कह रहे हैं, पड़े रहो न चुपचाप!

– महाराज कह रहे हैं, यह धारा मानो हमें खींचकर ले जायेगी।

महाराज – इसमें अविश्वास मत करना। संघ माने ठाकुर। ठाकुर ही हमारे संघ हैं। उनको हमलोग अपना बना लेंगे, किन्तु कार्य करते समय प्राय: हमलोग उन्हें भूले रहते हैं। केवल दो बार भगवान का नाम लिया, बैठे-बैठे

भोजन किया और रहे, स्वामीजी ने ऐसा तो नहीं कहा था। एकबार स्वामीजी ने कहा था – "उन्हें निरन्तर पुकारो रे।" स्वामीजी को ठाकुर कहते हैं – "वह बात मत कहो। यह कहो – पुकारो रे दिन में दो बार।" तो संघ माने क्या हुआ? – सब कुछ ही संघ है। उसमें सभी त्यागी हैं। किसी का तीव्र, किसी का मध्यम भाव है। अनन्त प्रकार के भेद हैं। किन्तु संघ ने सबको भ्रातृभाव में एकत्र करके रखा है। इसमें अच्छा, तीव्र, मन्द, मध्यम, उत्तम, सभी रहेंगे। संघ सबकी सहायता करेगा। संघ बलि-स्तम्भ है। हमें अपने सम्पूर्ण अहंकार को संघ की बलि-वेदी पर समर्पित करना होगा। जब तुम ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित होगे, तब तुम्हें संघ की आवश्यकता नहीं रहेगी। किन्तु उसके पहले तक संघ तुम्हारे अनुकूल होगा, अर्थात् तुम्हारी सहायता करेगा। इस संघ का सब कुछ अनुकूल होगा, ऐसा नहीं है। बल्कि जितना अनुकूल भाग उपयोग किया जाय, उतना ही अच्छा है। हम लोग कहते हैं, हम अनुकूल स्थान पर बैठकर ध्यान करेंगे। वैसे स्थान पर हजारों लोग बैठे रहते हैं, किन्तु उनका ध्यान नहीं होता। उस ध्यान की अनुकूलता में संघ की सहायता से जो आन्तरिक प्रयास कर रहा हूँ, उससे ही उन्नति होगी। इस संघ में आने से ही सब कुछ हो जायेगा और आकर भी कुछ नहीं हो रहा है, यह बात मत कहो। हमारे संघ में एक वैराग्यवान साधु थे। उनका बाद में पतन हो गया था। किन्तु वे क्या कहते हैं? वे संघ को दोष नहीं देते हैं। वे कहते हैं – "इतनी अनुकूलता पाकर भी मेरा आध्यात्मिक उत्थान नहीं हुआ। मेरा कितना दुर्भाग्य है।" वे कहते थे – "मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रय: – मनुष्य-जन्म मिला, महापुरुष का सान्निध्य मिला, किन्तु मुमुक्षुत्व नहीं हुआ। उसका सदुपयोग नहीं कर सका।" इन तीनों का प्रयोजन है। केवल मुमुक्षुत्व होने से नहीं होगा। मुमुक्षुत्व होने के लिए मूल धन चाहिए। मुमुक्षत्व के लिये बड़ा मूल धन है – मनुष्य जीवन। केवल महापुरुषसंश्रय से भी नहीं होगा। मुमुक्षुत्व के बिना भी नहीं होगा।

– मनुष्यत्व के बिना मुमुक्षा हो सकती है?

महाराज – होती है कि नहीं, हम लोग नहीं जानते। हो सकती है। देवताओं को भी होती है, किन्तु देवता भोगप्रवण होते हैं, अधिक भोग में रहते हैं, इसलिये उन्हें मुमुक्षुत्व कदाचित ही होता है।

– उपनिषद में है न? छाया के समान – 'छायातपयोरिव..'

महाराज – हाँ, वहाँ लिखा है –

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके।।

(कठोपनिषद, २/३/५)

यही बात कहते हैं। किन्तु जब ब्रह्मज्ञान होता है, तब वह जीव चाहे जिस लोक में रहे, वह और अधिक उस लोक में सीमित नहीं रहता। अत: सब एक है। इसका स्पष्ट उल्लेख है, इसकी चर्चा की गई है। इसलिये सब एक है। ब्रह्मज्ञान में जो भी प्रतिष्ठित हो, उसका लाभ है कि उसे एक ही दर्शन होगा। यह बात उपनिषद में कही गयी है।

(क्रमश:)

प्यारा प्यारा भारत देश

हरजीत निषाद

प्यारा भारत देश हमारा प्यारा भारत देश ।
उत्तर में हिम शिखर हिमालय गंग यमुना बहतीं,
मैदानों में बहती नदियाँ सागर में जा मिलतीं ।
खेतों में हैं अन्न उगलते इसके सभी प्रदेश,
सबसे प्यारा देश हमारा प्यारा भारत देश ।।
पश्चिम में वीरों का आंगन प्यारा राजस्थान,
महानगर मुम्बई से उड़ते हर पल नये विमान ।
यहाँ गूँजता गली गली में जय जय श्रीगणेश,
सबसे प्यारा देश हमारा प्यारा भारत देश ।।
तरह तरह की बोली भाषा भाँति भाँति के लोग,
अलग अलग हैं रंग यहाँ के प्यारे प्यारे लोग ।
बहुरंगी पहनावें इनके रंग बिरंगे केश,
सबसे प्यारा देश हमारा प्यारा भारत देश ।।
मेधावी हैं छात्र यहाँ के शूर-वीर सेनानी,
ऊँचा ध्वज लहराता इसका कभी हार न मानी ।
शान्ति प्रेम का देता जग में देश मेरा सन्देश,
सबसे प्यारा देश हमारा प्यारा भारत देश ।।

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

भारत के लाल : लाल बहादुर शास्त्री

''हम रहें या न रहें, लेकिन यह झंडा रहना चाहिए और यह देश रहना चाहिए। मुझे विश्वास है कि यह झंडा रहेगा, हम और आप रहें या न रहें, लेकिन भारत का सिर ऊँचा होगा। भारत दुनिया के देशों में एक बड़ा देश होगा और शायद भारत दुनिया को बहुत कुछ दे भी सके।'' यह अन्तिम सन्देश लाल बहादुर शास्त्री ने अपनी मृत्यु के एक दिन पहले दिया था।

लाल बहादुर शास्त्री का जन्म मुगलसराय में २ अक्तूबर, १९०४ में हुआ था। उनके पिता का नाम शारदा प्रसाद और माता का नाम रामदुलारी देवी था। लाल बहादुर जी जब एक-डेढ़ वर्ष के थे, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया था। उनके घर की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई थी। उनकी माँ को अपने बेटी-बेटों की पढ़ाई के लिए अधिक पैसे भी नहीं थे। छठवीं कक्षा के बाद लाल बहादुर जी अपने मौसाजी के पास बनारस पढ़ने चले गए। लाल बहादुर जी को अपने विद्यार्थी जीवन में बहुत गरीबी सहनी पड़ी थी। एक बार उन्हें बनारस से गंगा पार कर अपने घर जाना था, किन्तु उनके पास किराए के लिए पैसे नहीं थे। उन्होंने सोचा कि वे तैरकर गंगा पार करेंगे। जब वे गंगा में कूदे, तो आसपास के सभी लोग चिन्तित हो गए। मल्लाह लोग कहने लगे कि भला इस लड़के को देखो कि अकेले ही तैर रहा है। किन्तु उन्होंने बड़े उत्साह से उफनती नदी पार कर ली।

विद्यार्थी जीवन में उन्हें कॉपी-पैन्सिल, कपड़े-जूते इत्यादि के लिए भी पैसे नहीं रहते थे। उनकी स्कूल की फीस माफ कर दी गई थी। जूते फट जाने पर भी बार-बार वही जूते सिलाकर पहनते थे। कभी-कभी पूरा दिन वे बिना खाए ही रहते थे, क्योंकि उनके पास खाने के लिए भी पैसे नहीं रहते थे। किन्तु इसके लिए वे कभी भी अपनी माँ को परेशान नहीं करते थे। इतनी कम उम्र में भी वे समझते थे कि उनकी निर्धन माँ कहाँ से पैसे जुटा पाएँगी।

लाल बहादुर जी जब वाराणसी में पढ़ाई कर रहे थे, तब गाँधाजी ने एक जनसभा सम्बोधित की थी। उसमें उन्होंने कहा, ''भारतमाता दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई है। इन बेड़ियों को काटने के लिए जो अपना सब कुछ बलिदान कर सकें, ऐसे नौजवानों की आवश्यकता है।'' लाल बहादुर ने भी यह भाषण सुना और गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। उन्हें ढाई वर्ष के लिए जेल जाना पड़ा और वहाँ से आने पर उन्होंने फिर से अपनी पढ़ाई शुरू की। १९२५ में उन्होंने काशी विद्यापीठ से 'शास्त्री' की उपाधि प्राप्त की और यही नाम अन्त तक उनके साथ जुड़ा रहा।

लाल बहादुर शास्त्री को गरीबों के प्रति सहानुभूति थी। वे स्वयं भी एक निर्धन परिवार से थे। वे नहीं चाहते थे कि जो सुख-सुविधाएँ बाकी लोगों को उपलब्ध न हों, उनका वे स्वयं उपभोग करें। १९५२ में शास्त्रीजी रेलमंत्री बने। हमारे देश को स्वतन्त्र हुए सात-आठ वर्ष हुए थे और देश में गरीबी थी। एकबार वे गर्मी के मौसम में मुम्बई जा रहे थे। ट्रेन चलने पर उन्होंने पूछा कि डिब्बे में ठंडक अधिक है, जबकि बाहर गर्मी है। तब उनके निजी सचिव ने कहा कि इस डिब्बे में कूलर लगाया गया है। यह सुनते ही शास्त्रीजी अप्रसन्न हो गए और उनसे कहा, ''आपलोगों ने मुझसे बिना पूछे इस डिब्बे में कूलर लगाया है? क्या और लोग जो ट्रेन में बैठे हैं, उन्हें गर्मी नहीं लगती है? कायदे से मुझे भी थर्ड क्लास में बैठ कर चलना चाहिए, यदि उतना नहीं हो सकता, तो जितना हो सकता है, उतना तो करना चाहिए। कभी-कभी आप लोग बहुत गलत काम कर बैठते हैं? आगे ट्रेन जहाँ भी रुके, कूलर निकलवा दीजिएगा।'' होना क्या था, जब गाड़ी मथुरा स्टेशन पर रुकी, तब कूलर निकाल दिया गया।

शास्त्रीजी गाँधीजी को अपना आदर्श मानते थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन देशसेवा में अर्पित कर दिया था। कहते हैं कि शास्त्रीजी आठ बार जेल में गए और अपने जीवन के नौ साल उन्होंने जेल में ही बिताए। १९६४ में वे स्वतन्त्र भारत के द्वितीय प्रधानमन्त्री बने। ○○○

बच्चों का आँगन

जीवन में अनुशासन और सफलता

स्वामी मेधजानन्द

जब हम किसी सुन्दर बगीचे, सुन्दर घर अथवा किसी सुन्दर सार्वजनिक स्थल में जाते हैं, तो हमारा चित्त प्रसन्न हो जाता है। स्थानों की सुन्दरता का मुख्य कारण केवल वहाँ पर प्रदर्शित वस्तुएँ नहीं होतीं। बल्कि मुख्य कारण यह है कि वहाँ की प्रत्येक वस्तुएँ सुनियोजित एवं साफ-सुथरी रखी होती हैं। जैसे कि बगीचे में विभिन्न आकारों में लगी क्यारियाँ, लताएँ, पौधे इत्यादि व्यक्ति के चित्त को हर लेते हैं। घर भी सामान्य होने के बावजूद वहाँ की स्वच्छता और व्यवस्था होने से उसकी सुन्दरता प्रशंसनीय हो जाती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि इन स्थानों में सभी वस्तुओं में एक तालमेल अथवा अनुशासन स्थापित किया जाता है। हमारे जीवन में भी ठीक यही बात है। एक व्यक्ति को देखने मात्र से लगता है कि उसका व्यक्तित्व सुनियोजित है, जबकि दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति मात्र अस्त-व्यस्त प्रतीत होती है।

बचपन में हम अपने माता-पिता से अनेक आवश्यक बातें सीखते हैं, जैसे कि सुबह जल्दी उठना, व्यायाम करना, स्नान आदि करने के बाद भगवान से प्रार्थना करना, स्कूल से आने के बाद हाथ-पैर धोकर कुछ स्वल्पाहार करना, खेलना, शाम को मन्दिर जाना, भोजन के पहले हाथ-पैर धोना, सही समय पर सोना-उठना इत्यादि। बहुत बार अनिच्छापूर्वक इन सब आदेशों का पालन करना पड़ता है। इन नियमों का पालन करने में थोड़ा इधर-उधर हो जाने से माँ की मीठी-सी डाँट और उससे भी न सुधरें तो पिताजी की छड़ी! इन सब नियमों का मूल्य हमें तब समझ में आता है, जब हम युवावस्था में पहुँचते हैं।

विवेकानन्द शिला स्मारक, कन्याकुमारी के संस्थापक एकनाथ रानाडे जी के पिता का उन पर कड़ा अनुशासन था। उनके पिता ने नियम बना रखा था कि एकनाथ जी सुबह पाँच के पहले उठ जाएँगे। एकबार जब उनके पिता किसी कार्यवश नगर से बाहर गए थे, तब बालक एकनाथ थोड़ी देर से उठने लगे। उनके पिताजी जब घर वापस लौटे, तो देखा कि उनका बेटा सुबह पाँच बजे के बाद भी सोया हुआ है। उन्होंने बालक एकनाथ को डाँटने के साथ कुछ छड़ी भी लगा दी। परवर्तीकाल में एकनाथ जी कहते थे कि अपने पिता की डाँट का उन पर इतना असर हुआ कि वे पूरा जीवन किसी भी अवस्था में सुबह ४.३० बजे उठ जाते थे।

जिस युवक का जीवन अनुशासित होता है, वह प्रत्येक कार्य सहजता और प्रसन्नतापूर्वक कर लेता है। अनुशासन से एक नैतिक बल प्राप्त होता है और कालान्तर में वही नैतिक बल आत्मबल में परिवर्तित हो जाता है। जीवन में, विशेषकर युवावस्था में अनेक प्रलोभन आते हैं और युवक उनके चंगुल में फँस जाते हैं, किन्तु जिसका जीवन अनुशासित है, वह इन सब दुर्गुणों से सुरक्षित रहता है। सड़क के किनारे जब पौधे लगाए जाते हैं, तो उसके चारों ओर बाड़ लगाई जाती है, ताकि पशु चर न जाएँ, किन्तु कुछ वर्षों बाद जब वही पौधा एक बड़ा पेड़ बन जाता है, तब पशु इत्यादि को उससे बाँधकर रखा जाता है। वह पेड़ फलों से लद जाता है और उसकी छाया में अनेक लोगों को शान्ति प्राप्त होती है। ठीक इसी प्रकार यदि हम अपने प्रारम्भिक युवा जीवन में अनुशासन की बाड़ लगाएँगे, तो भविष्य में सुख, सफलता, शान्ति इत्यादि अनेक फल प्राप्त कर सकेंगे।

यहाँ अनुशासन का अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति हमेशा नियमों के कटघरे में रहे। अनुशासन के नाम पर हमें शुष्क हृदय भी नहीं हो जाना चाहिए। बहुत बार परिस्थितिवश हमें अपने जीवन में सामंजस्य लाना पड़ता है, किन्तु यह कभी भी अपने नैतिक मूल्यों को देकर नहीं होना चाहिए। एक बात का ध्यान सदैव रखें कि दुनिया की चमक-दमक देखकर हम अपने नैतिक नियमों को तिलांजलि न दे दें।

कभी-कभी विद्यार्थी कॉलेज में कदम रखने से ही अपने अनुशासनपूर्ण जीवन की उपेक्षा कर देते हैं। एक छोटी-सी घटना से हम इसे समझ सकते हैं। एक अच्छे घर के विद्यार्थी ने महाविद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया। वह धार्मिक प्रवृत्ति का और सदाचारी था। उसने अपने कॉलेज में देखा कि कुछ छात्र ऐसे हैं, जो पढ़ने में उससे तेज हैं, किन्तु उनका जीवन अनैतिक है। वह सोचने लगा कि मुख्य वस्तु तो पढ़ाई में अच्छे अंक प्राप्त करना है, इसके लिए धर्म-कर्म की क्या आवश्यकता। होना क्या था, उसने भी बाकी लोगों के समान अस्त-व्यस्त जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। कुछ समय बाद उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने बाकी विद्यार्थियों की देखा-देखी में अपना अच्छा जीवन बर्बाद कर दिया। उसने फिर से संयमित जीवन व्यतीत किया और अपनी पढ़ाई में सफल हुआ। ○○○

योग क्या है?

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ संन्यासी हैं। ये रामकृष्ण मठ चेन्नई से प्रकाशित होनेवाली 'वेदान्त केसरी' मासिक पत्रिका के पूर्व सम्पादक थे। इनकी पातंजल योग विषयक प्रवचनमाला काफी लोकप्रिय हुई है। पातंजल योग से सम्बन्धित तप, स्वाध्याय, शरणागति आदि कई लेख इनकी पुस्तक 'आनन्द खोज' में पहले से ही प्रकाशित हो चुके हैं। अब योग के अन्य विषय, जो अब तक अप्रकाशित हैं, महाराजजी ने विशेष रूप से विवेक ज्योति के पाठकों के लिये लिखे हैं, उन्हें प्रकाशित किया जा रहा है। - सं)

योग क्या है? यह भी कोई प्रश्न है। आज ऐसा कौन है, जो योग के बारे में नहीं जानता? पाँचवीं कक्षा का एक दस वर्ष का बालक उसके बारे में केवल जानता ही नहीं, बल्कि उसका अभ्यास करता है। योग की कक्षाएँ होती हैं, योग के शिविर लगाए जाते हैं तथा उस पर गोष्ठियाँ और सम्मेलन होते हैं। योग आज विद्यालय और महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम का अंग हो गया है। अमेरिका में हजारों लोग योग का अभ्यास करते हैं, भले ही उन्हें यह न मालूम हो कि वह भारतीय मूल का है। अनेक रोगी रोग दूर करने के लिए तथा स्वस्थ रहने के लिये योगाभ्यास करते हैं। बाबा रामदेव के कारण उसे आप टीवी पर भी देख सकते हैं।

यह सत्य है कि योगासन एवं प्राणायाम योग के अंग हैं। पर योग इनसे भी अधिक है। पुन: हठ योग, जप योग, राज योग, लय योग, कुण्डलिनी योग आदि अनेक प्रकार के योग भी हैं, भगवद्गीता को योगशास्त्र कहा गया है। जैसाकि हम गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में उल्लिखित पाते हैं। यही नहीं, गीता के प्रत्येक अध्याय को योग का नाम दिया गया है। यथा प्रथम अध्याय 'अर्जुन-विषाद-योग' दूसरा अध्याय 'सांख्ययोग', बारहवाँ अध्याय 'भक्तियोग' इत्यादि। इस दृष्टि से गीता में अठारह योग हैं। योग माने भगवान से युक्त होना तथा उसका मार्ग भी योग ही कहलाता है। इस प्रकार गीता में भगवान की प्राप्ति के अठारह उपाय बताए गए हैं। ध्यान देने की बात यह है कि पहला अध्याय 'अर्जुन-विषाद-योग' कहा गया है। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति अर्जुन की तरह अपने विषाद, हताशा, निराशा और दुख के अवसरों पर भगवान की शरण में चला जाय, तो उसका यह कार्य योग बन जाएगा। तात्पर्य यह है कि हम जीवन की प्रत्येक क्रिया, प्रिय, अप्रिय अनुभव आदि को भगवत् प्राप्ति का उपाय या योग बना सकते हैं। आज के युग के लिए स्वामी विवेकानन्द ने इन विभिन्न उपायों को चार योगों में विभक्त किया है। राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग।

इसके अतिरिक्त भगवद्गीता में ही हम योग की तीन स्पष्ट परिभाषाएँ पाते हैं। द्वितीय अध्याय में 'योग: कर्मसु कौशलम्' और 'समत्वं योग उच्यते'' कहा गया है और छठे अध्याय में 'दुखसंयोग-वियोग-योगसंज्ञित'' कहा गया है। छठे अध्याय की इस परिभाषा को उसके पहले के तीन श्लोकों में विस्तार से बताया गया है। दुख के संयोग से बचना, ऐसी नकारात्मक परिभाषा योगाशास्त्र के व्याख्याकार भोज ने भी दी है। वे योग को अनात्मा से आत्मा को अलग करना कहते हैं।

आइए, अब हम पतंजलि मुनि द्वारा दी गई योग की परिभाषा पर विचार करें। अपने प्रसिद्ध योग सूत्रों के प्रारम्भ में ही पतंजलि कहते हैं – 'योग: चित्तवृत्तिनिरोध:' – चित्त की वृत्तियों का निरोध योग कहलाता है। भाष्यकार व्यास के अनुसार योग समाधि को कहते हैं, 'योग: समाधि:'। इस समाधि को प्राप्त करने के जो आठ उपाय हैं, वे भी योग कहलाते हैं। अत: अष्टांगयोग कहा जाता है। प्रथम पांच बहिरंग और अंतिम तीन याने धारणा, ध्यान, समाधि अन्तरंग योग कहलाते हैं।

योग का मुख्य अर्थ या सार है एकाग्रता

सभी एकाग्रता से परिचित हैं। यही नहीं, हम सभी किसी-न-किसी मात्रा में अपने मन को नियंत्रित करने का तथा एकाग्रता का प्रयास न्यूनाधिक मात्रा में करते ही रहते

हैं। एक विद्यार्थी को पढ़ाई के लिए मन को एकाग्र करना पड़ता है। क्रिकेट के खिलाड़ी को भी बैटिंग या बौलिंग के लिये एकाग्रता की आवश्यकता है। यही नहीं किसी रोचक उपन्यास को पढ़ने में अथवा सुन्दर संगीत सुनने में हमारा मन एकाग्र हो ही जाता है। यदि एक चंचल बालक को टीवी के कार्टून नेटवर्क के सामने बिठा दिया जाए, तो वह एकाग्र हो जाता है। एक टाईपस्टि टाईप करते समय तथा एक शल्य चिकित्सिक ऑपरेशन करते समय पूरी तरह एकाग्र हो जाता है। इस प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों में उस समय के लिये मन एक विषय विशेष में एकाग्र होता है और अन्य बातें उस समय के लिये मन से हटा दी जाती हैं। इन सभी प्रकार की चित्तवृत्तियों के निरोध और एकाग्रता को passive concentration या निष्क्रिय एकाग्रता कहा जा सकता है, क्योंकि इन सभी को किसी इन्द्रिय विषय की सहायता से किया जाता है। एकाग्रता का विषय या क्रिया बाहर होते हैं और नेत्रों अथवा कर्ण आदि इन्द्रियों के माध्यम से संवेदन मन में आते हैं और मन उन पर एकाग्र होता है।

पतंजलि द्वारा कहा गया चित्तवृत्ति निरोध इससे भिन्न है। इसमें आँखें बन्द करके, बिना हिले-डुले बैठकर मन को एक मानसिक चित्र, एक मंत्र अथवा किसी एक विचार विशेष पर एकाग्र करना होता है। इसमें किन्हीं इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान नहीं होता, कोई बाहरी सहायता नहीं ली जाती। एक दक्ष शल्य-चिकित्सक अथवा क्रिकेट का कोई सफल खिलाड़ी भी ऐसी एकाग्रता और ध्यान में कठिनाई का अनुभव करेगा। ऐसी एकाग्रता में मन का मुख्य भाग तो एकाग्रता के विषय पर लगाना होता है। पर मन का एक भाग सजग रहकर उसके अतिरिक्त अन्य उठ रहे विचारों को दूर करने का कार्य करता है। यह एक अत्यन्त सक्रिय प्रक्रिया है और इसे active concentration या सक्रिय एकाग्रता कहा जा सकता है, इसमें एकाग्रता का प्रयास और अन्य विचारों को दूर रखने का प्रयास ये दोनों होते हैं। इसमें आसक्ति भी है और अनासक्ति भी। यह सक्रिय एकाग्रता योग का सार-सर्वस्व है। दीर्घ काल तक निरन्तर व्यवधानरहित तथा लगन के साथ किए गए इसके अभ्यास से एक स्थिति आती है, जब मन में निरवच्छिन्न रूप से तैलधारावत् एक ही प्रकार की चित्तवृत्ति उठती है। यही ध्यान कहलाता है, जो अन्त में समाधि में परिवर्तित हो जाता है।

योगी के मन की दो विशेषताएँ होती हैं। पहली वह किसी भी विषय पर एकाग्र हो सकता है, चाहे वह अणु के समान छोटा हो या सृष्टि के समान बड़ा, जैसा कि योगसूत्र में कहा गया है, – 'परमाणु-परम-महत्त्वान्तोऽस्य वशीकार:'।[१] निष्क्रिय एकाग्रता वालों के मन से यह पूर्ण रूप से भिन्न है, जो केवल अपनी रुचि के विषय में ही एकाग्र हो पाता है। योगी का मन मिट्टी के एक ठोस लौंदे के समान होता है, जो किसी भी दीवार या सतह पर लगाया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – तुम्हें इस बात के लिये तैयार होना चाहिए कि एक क्षण तो तुम पूर्ण रूप से ध्यान में मग्न हो सको, पर दूसरे ही क्षण मठ के (चारागाह की भूमि की ओर ईशारा करके स्वमीजी ने कहा,) इन खेतों को जोतने के लिये उद्यत हो जाओ। अभी तुम इस बात के योग्य बनो कि शास्त्रों की कठिन गुत्थियों को स्पष्ट रूप से समझा सको, पर दूसरे ही क्षण उसी उत्साह से इन खेतों की फसल को ले जाकर बाजार में बेच सको।[२]

अत: ऐसे मन की दूसरी विशेषता यह है कि उसमें आसक्ति या चिपकने की उतनी ही शक्ति होती है, जितनी अनासक्ति की। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार हम केवल इतना ही नहीं चाहते कि यह प्रेम की अथवा आसक्ति की महान शक्ति, एक ही वस्तु पर सारी लगन लगा देने की शक्ति, या दूसरों के लिये अपना सर्वस्व खो बैठने और स्वयं का विनाश तक कर डालने का देवदुर्लभ गुण हमें उपलब्ध हो, वरन् हम देवताओं से भी उच्चतर होना चाहते हैं। सिद्ध पुरुष अपनी सम्पूर्ण लगन प्रेम की वस्तु पर लगा सकता है और फिर भी अनासक्त रहता है।[३]

ऐसी सक्रिय एकाग्रता के सबसे महान उपदेशक स्वामी विवेकानन्द में स्वयं में किसी भी विषय या वस्तु पर मन को एकाग्र करने की अद्‌भुत क्षमता थी। वे पुस्तक पढ़ते समय इतने एकाग्र हो जाते थे कि उस समय बार-बार पुकारे जाने पर भी सुन नहीं पाते थे। इस एकाग्रता के कारण वे जो पढ़ते थे वह उन्हें कण्ठस्थ हो जाता था। एक बार उन्हें छर्रे की एक बन्दूक चलाने का अवसर मिला। उसमें वे हिलते-डुलते लक्ष्य पर एक साथ बारह निशाने ठीक लगा सके थे। फिर ध्यान में वे इतने एकाग्र हो जाते थे कि सारा शरीर मच्छरों से छा जाए, तो भी उन्हें पता नहीं चलता

था। स्वयं योगसूत्र के रचयिता पतंजलि भी एक ही साथ एक योगी, वैद्यराज और संस्कृत व्याकरणवेत्ता थे, जैसा कि उनके प्रणाम मंत्र में कहा गया है –

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां,
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां,
पतञ्जलि प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।

अर्थात् मैं उन मुनि प्रवर पतंजलि को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने मन के मल या दोषों को योग के द्वारा, तथा वाणी के दोषों को पाणिनि व्याकरण पर अपने भाष्य द्वारा और शरीर के दोषों को आयुर्वेद के एक ग्रन्थ द्वारा दूर किया।

माँ सारदा के जीवन में भी हम आसक्ति और अनासक्ति का सर्वश्रेष्ठ दिग्दर्शन पाते हैं, जिसे देखकर रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सारदानन्द जी ने कहा था, ''मैं ऐसी आसक्ति (जैसी माँ सारदा में राधु के प्रति थी) नहीं देखी, ऐसी अनासक्ति भी नहीं देखी। माँ सारदा सारा जीवन राधु के प्रति अत्यधिक आसक्त होने के कारण एक दिन भी उसके बिना नहीं रह सकती थीं, न ही उससे अलग अन्य बिस्तर पर सो सकती थीं। फिर भी अन्तिम दिनों में उन्होंने इस आसक्ति को पूरी तरह काट दिया था और राधू को देखना तक नहीं चाहती थीं।''

तात्पर्य यह कि मन पर पूर्ण प्रभुत्व ही योग का वास्तविक अर्थ है।

योग एक जीवन पद्धति भी है। योगसूत्र में पतंजलि ने पाँच नियम और पाँच यम का भी उल्लेख किया है। दुर्भाग्य है कि लोग योगाभ्यास अर्थात् आसन और प्राणायाम का तो अभ्यास करते हैं, पर उसके पहले के इन दस सद्गुणों को अनदेखा कर देते हैं। सामान्यत: उनकी चर्चा ही नहीं होती। अगर कोई यम-नियमों का अभ्यास किए बिना ध्यान करने का प्रयत्न करे, तो वह सफल नहीं हो सकता। यही नहीं, अपवित्र मन को जबरदस्ती एकाग्र करने का यदि प्रयत्न किया जाए, तो मन बिगड़ भी सकता है। यदि कोई सफल हो जाए, तो उसकी बुराइयों, काम, क्रोध, लोभादि को ही अधिक बल मिलेगा। इसीलिए जब कोई भक्त पूज्य स्वामी यतीश्वरानन्द से शिकायत करते हुए कहते थे कि वे ध्यान नहीं कर पाते हैं, तो वे उत्तर देते थे कि यह अच्छा ही है कि ध्यान नहीं हो पाता। अपवित्र मन से ध्यान न करना ही अच्छा है।

पतंजलि ने तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान को क्रियायोग कहा है।[४] इसका अर्थ यह है कि योग को प्रारम्भ करने के पूर्व इन तीन की नितान्त आवश्यकता है। तप से हमारा शरीर सधता है, स्वाध्याय से मन और ईश्वर-प्रणिधान से भावनाएँ संयमित एवं शुद्ध होती हैं। ये तीन प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को स्वस्थ रखने के लिये परमावश्यक हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तो सार्वभौम सद्गुण हैं। आज के युग के लिए इनकी आवश्यकता अत्यधिक है। इनके न्यूनाधिक मात्रा में अभ्यास के बिना कोई भी व्यक्ति या समाज स्वस्थ नहीं माना जा सकता।* OOO

* लेखक के इन तीन सद्गुणों पर विस्तृत लेख उनकी पुस्तक 'आनन्द की खोज में' देखें।

सन्दर्भ सूत्र – १. योगसूत्र १.४० **२.** विवेकानन्द साहित्य पंचम खण्ड, पृ. ३३७, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, १९८९, **३.** वही २०१४, नवम् खण्ड, पृ.१७८ **४.** योगसूत्र २.१

अतीत से ही भविष्य बनता है। अत: यथासम्भव अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है, भरपेट उसका जल पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से अधिक ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान थे। पहले हमें यह याद रखकर समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौन-सा खून हमारी नसों में बह रहा है... इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम निश्चय ही पहले से भी श्रेष्ठ भारत बनाएँगे।

जो लोग सदा अपने अतीत की ओर दृष्टि लगाए रखते हैं, आजकल सभी लोग उनकी निन्दा करते हैं। वे कहते हैं कि इस प्रकार सदा अतीत की ओर देखते रहने के कारण ही हिन्दू जाति को नाना प्रकार के दुख तथा संकट भोगने पड़ते हैं, किन्तु मेरी धारणा है कि इसका विपरीत ही सत्य है। जब तक हिन्दू जाति अपने अतीत को भूली हुई थी, तब तक वह अचेत अवस्था में पड़ी रही और अतीत की ओर दृष्टि जाते ही चहुँ ओर पुनर्जीवन के लक्षण दीख रहे हैं। अतीत के साँचे में भविष्य को ढालना होगा, अतीत ही भविष्य होगा।

– स्वामी विवेकानन्द

गीतातत्त्व चिन्तन (८/१२)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१,२, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के मार्च, १९९१ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है । सं.)

पिछली बार हमने १५वें श्लोक पर विचार किया था। उसमें कहा गया था कि संसार दुखमय है। हम लोग सुख की संवेदना को पाने के लिए कितना दुख भोग करते हैं। हम किसी भी सुख को पकड़ने की चेष्टा करते हैं। थोड़ी देर के लिए वह संवेदना आती है और उसी को हम सुख कहते हैं। फिर वह चली भी जाती है। सुख के पहले भी दुख और सुख का थोड़ा-सा उपभोग कर लेने के बाद पुन: दुख, यह तो हम बारम्बार देखते ही हैं। पिछले श्लोक में कहा गया है – **नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः**। भगवान श्रीकृष्ण ऐसे लोगों को महात्मा कहते हैं, जिन्होंने संसार के स्वरूप को समझ लिया है और उन्हें पाने की चेष्टा करते हैं। क्योंकि श्रीकृष्ण को पाने से संसार का आवागमन कट जाता है। संसार का आवागमन दुखयुक्त और अनित्य है, जब हम संसिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं, तो वह कट जाता है। इसके बाद प्रभु ने १६वें श्लोक में कहा है –

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।१६।।

अर्जुन (हे अर्जुन !) आब्रह्मभुवनात् (ब्रह्मलोक पर्यन्त) लोका: (सभी लोक) पुन: आवर्तिन: (पुन: पुन: आनेवाले हैं) तु (परन्तु) कौन्तेय (हे कुन्तिपुत्र !) माम् (मुझे) उपेत्य (प्राप्त करने पर) पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) न (नहीं) विद्यते (होता)।

– "हे अर्जुन ! भूलोक से ब्रह्मलोक तक सभी लोक पुन: पुन: आनेवाले हैं। परन्तु हे कौन्तेय ! मुझे प्राप्त करने पर पुनर्जन्म नहीं होता।"

आब्रह्म - अर्थात् ब्रह्मलोक से लेकर अन्य जितने भी लोक हैं, वे सभी पुनरावर्ती हैं, अर्थात् बारम्बार उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मलोक अर्थात् ब्रह्मा का लोक। ब्रह्म और ब्रह्मा में अन्तर है। भक्ति की भाषा में, ब्रह्म को नारायण कहा जाता है। वे नारायण जल में शयन करते हैं। उनकी नाभि से कमल उपजा। उस कमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। तो ब्रह्मा की सृष्टिक्रम में सबसे पहली अभिव्यक्ति हुई। ब्रह्मा को ही सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ आदि अनेक नामों से जाना जाता है। यह हुआ सृष्टि का प्रथम सोपान। जो भी वस्तु सृष्ट होती है, वह मृत्यु को भी प्राप्त होती है। तो ब्रह्मा भी उपजे हैं, इसलिए मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इसीलिए ब्रह्मा का जो लोक है, वह भी शाश्वत नहीं है। मनुष्यों का लोक ब्रह्मा के लोक की तुलना में बहुत छोटा है। ब्रह्मा का लोक काफी बड़ा हो सकता है, फिर भी वह अशाश्वत ही है, उसकी उत्पत्ति होती है तथा नाश होता है। पर **मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते** – हे अर्जुन, यदि तू मुझे पा लेता है, तो तेरा पुनर्जन्म नहीं होगा। मानो प्रभु का लोक ब्रह्मा के लोक से भी परे है। वे ही तो ब्रह्मा को उपजानेवाले हैं। हमें यही समझना होगा कि वे ही सनातन ब्रह्म हैं। हम पन्द्रहवें अध्याय में ब्रह्म के विषय में पढ़ते हैं। एक क्षर है और दूसरा अक्षर। इन दोनों से जो परे है, वह श्रेष्ठ पुरुषोत्तम है। इसका मतलब यह हुआ कि भगवान श्रीकृष्ण जिसे मैं और मेरा कह रहे हैं, वह उस ब्राह्मीभाव की ओर, उस परम तत्त्व की ओर लक्षित करते हैं। उसी परमात्मा, उसी परब्रह्म, और उसी पुरुषोत्तम की ओर इंगित कर रहे हैं। यहाँ वे कहते हैं कि जो मुझे प्राप्त होते हैं, उस मनुष्य को पुन: जन्म लेना नहीं पड़ता। इसको आप दोनों दृष्टियों से देख सकते हैं। ज्ञानयोगी ज्ञान की दृष्टि से देख सकते हैं और जो भक्त हैं, वे भक्ति की दृष्टि से देख सकते हैं। प्रभु श्रीकृष्ण भक्तों पर कृपा करने के लिए अवतार लेकर आते हैं। शास्त्र कहते हैं, जो भी उनकी शरण में जाता है, उसका जन्म-मृत्यु का चक्कर कट जाता है। यह भक्ति की दृष्टि है। ज्ञानी की दृष्टि क्या है? सप्त लोक ऊपर और

सप्त लोक नीचे हैं। ऐसे चौदह लोकों, चौदह भुवनों की कल्पना की गयी है। भू:, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप: और सत्यम् ऐसे ये ऊपर के सप्त लोक हैं। उसी प्रकार अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, और पाताल, ये नीचे लोक हैं। नीचे और ऊपर के लोकों का क्या मतलब है? ये ऊपर और नीचे पृथ्वी के कहाँ पर हैं? यह सब सापेक्ष है। यदि हम कहेंगे कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम। ये सब दिशाएँ दुनिया के पीछे भी तो नहीं हैं। ये सापेक्ष हैं। सूरज इधर उगता है, उसे हम पूर्व कहते हैं। उधर जाकर अस्त होता है, उस दिशा को कह दिया पश्चिम। पूर्व के बाँयीं ओर को उत्तर कह दिया, और उसके विरुद्ध दिशा को हमने दक्षिण कह दिया। मनुष्य ने ही इन दिशाओं की कल्पना की है। वही ऊपर और नीचे की कल्पना करता है। अगर हम अन्तरिक्ष में चले गए, तब फिर कौन ऊपर और कौन नीचे है? चन्द्रमा पृथ्वी से ऊपर है या चन्द्रमा पृथ्वी से नीचे है? हम अभी चन्द्रमा को ऊपर देखते हैं, तो कहते हैं कि चन्द्रमा ऊपर है। वहाँ से देखेंगे तो वह ऊपर और पृथ्वी नीचे हो जाएगी। ये सब सापेक्ष ही तो हैं। तो यहाँ कहा गया है कि जितने भी लोक हैं, वे पुनरावर्ती हैं। वह कैसे? भू: अर्थात् पृथ्वी। भुव: – इस पृथ्वी और सूरज के बीच का जो अन्तरिक्ष है, उसे भुव: कहते हैं। स्व: अर्थात् प्रसिद्ध स्वर्ग। उसके बाद में मह: सूर्य के ऊपर जो अन्तरिक्ष है, उसे मह: कहते हैं। सूर्य के बाद जो परमेष्ठि लोक के ऊपर जो अन्तरिक्ष है, उसको तप: कहा गया। उसके भी ऊपर जो है, उसको कहा गया है सातवाँ लोक - सत्यम्। वही सत्य या ब्रह्मलोक है। ऐसा कहा गया कि ये सभी लोक पुनरावर्ती हैं। जब मनुष्य की मृत्यु होती है, तो क्या होता है? इस पर विचार करेंगे। यह शरीर जिसे स्थूल शरीर कहते हैं, वह मर जाता है, पंच तत्त्वों को प्राप्त हो जाता है। या तो उसे जला देते हैं या फिर गाड़ देते हैं। पर इसके भीतर सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर है। कारण शरीर का अर्थ है वासनाहीन। सूक्ष्म शरीर अर्थात् प्रारब्ध-संस्कार। ये सूक्ष्म शरीर का निर्माण करते हैं। तो सूक्ष्म शरीर कारण शरीर पर सवार होकर इस स्थूल शरीर को छोड़कर चला जाता है। वह मानो स्पन्दनशील है। जो भी सूक्ष्म है, वह स्पन्दित होता है। आप यह देखिएगा कि एटम भी स्पन्दित होता है। एटम को तोड़कर देखा गया कि इलेक्ट्रान और प्रोटोन भी स्पन्दित होते हैं। ये कम्पनशील हैं। तो ठीक इसी प्रकार का कम्पनशील भाव सूक्ष्म शरीर में बना रहता है। स्वामी विवेकानन्दजी कहा करते थे कि जैसे हम यहाँ पर बैठे हैं, तो कितनी ही सूक्ष्म योनियाँ यहाँ पर विद्यमान हों, परन्तु हम उनको देख नहीं पाते। परन्तु जो योगी होते हैं, वे अपनी योग-साधना से एक ऐसी दृष्टि पा लेते हैं, जिसके द्वारा वे उन सूक्ष्मतर योनियों को भी देख पाते हैं। यहाँ पर हम देखते हैं कि सूक्ष्म शरीर का स्पर्श नहीं लगता। सूक्ष्म शरीर का स्पर्श केवल हमारे सूक्ष्म शरीर के साथ ही लग सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य जन्मने के बाद स्थूल बन जाता है और मृत्यु के बाद सूक्ष्म हो जाता है। मानो वह कम्पनशील हो गया। वह एक विशिष्ट wavelength में जाकर घूमने लगेगा। जैसे हम अन्तरिक्ष में एक यान छोड़ते हैं। वह यान जाकर चक्कर मारता रहता है। ठीक इसी प्रकार जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो रहा है, जो उसके जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों में से कुछ प्रबल एवं मुख्य संस्कार ही उसका अगला जन्म तय करते हैं। इन संस्कारों को ही प्रारब्ध कहते हैं और इस प्रारब्ध के द्वारा उसका अगला जीवन निश्चित होता है। उसके पास तो संस्कार बहुत-से हैं। तो बाकी संस्कार कहाँ जाते हैं? ये बाकी संस्कार संचित होते हैं। जैसे खजाने में कोई चीज संचित होती है, उसी प्रकार ये संस्कार संचित होते हैं। ये संस्कार जहाँ संचित होते हैं, उसे कारण शरीर कहते हैं। वह वासनात्मक शरीर होता है। जो प्रारब्ध बनानेवाले संस्कार सूक्ष्म शरीर के माध्यम से अगला जीवन देने के लिए अभी निकल गये, ये विशिष्ट प्रकार की frequency वाले होते हैं। वे मानो उस विशिष्ट लोक में चले जाते हैं, जहाँ पर उस frequency के जीव विद्यमान रहते हैं। इन लोकों में ऐसे जीव भी होते हैं, जिनमें मानसिक स्थिरता होती है और कुछ में मानसिक अस्थिरता होती है। जो

मानसिक अस्थिरता वाले लोक हैं, वे नरक कहलाते हैं और जो मानसिक स्थिरता वाले लोक हैं, वे स्वर्ग कहलाते हैं। वहाँ किसी प्रकार का कोई दुख नहीं होता और सब प्रकार का सुख होता है। पर जहाँ पर मानसिक अस्थिरता होती है, वहाँ पर बहुत कष्ट होता है। कष्ट किस प्रकार से होता है? मान लीजिए मेरे सामने सुस्वादु व्यंजन रख दिये और मैं खाने का बहुत लोभी हूँ। परन्तु मेरी जीभ कटी हुई है, तो मैं उसका भोग नहीं कर पा रहा हूँ। क्योंकि मेरे पास भोग करने का जो साधन है, वह नहीं है। कितना कष्ट होगा कि मैं खाना भी चाहता हूँ, पर खा नहीं पाता हूँ। यही बात विभिन्न लोकों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों में भिन्न-भिन्न प्रकार की frequency हम देखते हैं। जब हम रडियो tune करते हैं, तो एक समान frequency हो, तो आवाज पकड़ में आ जाती है। परन्तु एक ही frequency में कई आवाजें आती हैं, क्योंकि हमारा रेडियो कई आवाजों को पकड़ रहा है। यह उदाहरण केवल समझने के लिए दिया है। भिन्न-भिन्न लोकों की जो कल्पना की गई है, वह इसी प्रकार है। जो सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर को छोड़कर कारण शरीर के साथ निकल गया, वह उसी लोक में जाएगा जहाँ समान स्पन्दन वाले क्षेत्र हों। वहाँ पर वह रहेगा। सुख या दुख का भोग करेगा। यदि उसके जीवन में मानसिक स्थिरता रही है, तो सुखभोग होगा। यदि जीवन में बहुत-से कुसंस्कार भरे पड़े हैं, तो वह मानसिक अस्थिरता वाले लोक में जाकर दुख भोग करेगा। यहाँ पर भगवान कृष्ण कह रहे हैं कि देखो, अर्जुन, यह ब्रह्मा का लोक भी विनाशी है। मनुष्य लोक की दृष्टि से वह खूब लम्बा भले ही हो। पर उसका भी एक-न-एक दिन अन्त तो होता ही है। क्योंकि ब्रह्मा पैदा होता है, इसलिए उसकी मृत्यु तो अवश्य ही होगी। उसके नीचे सारे के सारे लोक हैं। जब ब्रह्मा का लोक ही विनाशी है, तो बाकी के लोक तो विनाशी हैं ही, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। ये सब असत् स्वरूप है। इसीलिए ये सब पुनरावर्ती हैं। ये सब आते हैं और चले जाते हैं। ब्रह्मा का पद सौ वर्षों तक रहता है। ब्रह्मा के सौ वर्ष मनुष्य के सौ वर्ष से भिन्न हैं। देवताओं के सौ साल की गणना भिन्न है। पर इस प्रकार की भिन्नता को हम विज्ञान से ठीक-ठीक मिलाकर देख नहीं पाये हैं। जैसे 'लाइट इयर' कहा जाता है। इसमें भी बहुत कुछ इसी प्रकार की धारणा है। 'लाइट इयर' अर्थात् 'प्रकाश वर्ष'। प्रकाश की गति एक मिनट में १,८६,००० मील है। तो एक वर्ष में प्रकाश १,८६,००० × ६० × २४ × ३६५ मील तक जाएगा। इस तरह हम गणना करके प्रकाश वर्ष की दूरी प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार एक प्रकाश वर्ष का हिसाब लगया जा सकता है और पता लगाया जा सकता है सूर्य से कितने प्रकाश वर्ष दूर है? एक है अकल्पित। परन्तु विज्ञान से सब कल्पित है। वह तो कल्पित है। पूरी तरह गणित के द्वारा सिद्ध है। इसीलिए सिद्ध है, क्योंकि हम उसी के बल पर चन्द्रमा पर पहुँचने में सफल हुए हैं। एक सामान्य मनुष्य के लिए वह अकल्पित लगता है। परन्तु गणितज्ञ के लिए, वैज्ञानिक के लिए तो वह अकल्पित नहीं है। वैज्ञानिकों ने यह घोषणा की थी कि इतने घण्टों, इतने मिनट और इतने सेकण्ड में हमारा यह चन्द्रयान चन्द्रमा पर पहुँच जाएगा। ठीक उसी वक्त यान जाकर वहाँ उतर ही गया। इसका मतलब क्या है? तात्पर्य यह है कि जो हमारे लिए कल्पना मालूम पड़ती है, विज्ञान के लिए वह कल्पना नहीं है। तो यहाँ पर जो ब्रह्मा के वर्ष के बारे में कहा है, यह भले ही हमें एक पौराणिक पहेली जैसी मालूम पड़े। पर यह भी हो सकता है कि विज्ञान की दृष्टि से हम इसे समझने में समर्थ हो ही जाएँ। **(क्रमशः)**

प्रेमरत्न की खान

डॉ. प्रदीप कुमार चित्रांशी

साधू ही सम्मान है, साधू को सम्मान ।
मान और सम्मान को साधू करता दान ।।
गुरु सरोवर ज्ञान का और प्रभु का धाम ।
सुख-सुविधा के बीच में, बनकर रहता आम ।।
भक्ति करे जो राम की, होय सदा कल्यान ।
तुलसी ने भी पा लिया भक्ति समुचित ज्ञान ।।
माया में क्यों रम रहा, ऐ मूरख अन्जान ।
ये देगी तुमको सदा, झूठा ही सम्मान ।।
माँ के सारे नाम को, जपिये सुबह शाम ।
माँ-पूजा की शक्ति से, बनते बिगड़े काम ।।
माँ चरणों में पाइये प्रेमरत्न की खान ।
मीरा बनकर जाइये तजकरके अभिमान ।।

स्वातंत्र्य सूत्र के उद्घोषक : स्वामी विवेकानन्द

राजेन्द्र कुमार चड्ढा

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – "**भारत भूमि पवित्र भूमि है। भारत मेरा तीर्थ है। भारत मेरा सर्वस्व है। भारत की पुण्य भूमि का अतीत गौरवमय है। यही वह भारत वर्ष है, जहाँ मानव प्रकृति एवं अन्तर्जगत के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर पनपे थे।**" स्वामीजी के उक्त शब्दों से भारत, भारतीयता और भारतवासियों के प्रति उनके प्रेम, समर्पण और भावनात्मक सम्बन्ध स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। स्वामी विवेकानन्द को युवा सोच का संन्यासी माना जाता है। विवेकानन्द केवल आध्यात्मिक पुरुष नहीं थे, वरन् विचारों और कार्यों से एक क्रान्तिकारी संत थे। इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि भारत के प्रति जो अगाध प्रेम स्वामीजी ने अन्य व्यक्तियों में संचारित किया था, वही स्वतन्त्रता आन्दोलन की मुख्य प्रेरणा थी। नवजीवन प्रकाशन, कलकत्ता से प्रकाशित भूपेन्द्रनाथ दत्त की पुस्तक 'पेट्रिओट प्रोफेट स्वामी विवेकानन्द' में उल्लेख है कि अपनी फ्रांसीसी शिष्या जोसेफाइन मैक्लाउड से स्वामीजी ने कहा, "क्या निवेदिता जानती नहीं है कि मैंने स्वतन्त्रता के लिये प्रयास किया, किन्तु देश अभी तैयार नहीं है, इसलिए छोड़ दिया।" सम्भवत: स्वामीजी ने देश-भ्रमण के दौरान पूरे देश के राजाओं को जोड़ने का प्रयत्न किया होगा, जिसका संकेत उक्त चर्चा में मिलता है। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन पर विवेकानन्द का प्रभाव, फ्रांसीसी क्रान्ति पर रूसो और चीनी क्रान्तियों पर कार्ल मार्क्स के प्रभाव की तुलना में किसी भी तरह से कम नहीं था।

राष्ट्र-भाव का जागरण

कोई भी स्वतन्त्रता आन्दोलन व्यापक राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि के बिना सम्भव नहीं है। सभी समकालीन स्रोतों से स्पष्ट होता है कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना के जागरण में विवेकानन्द का सबसे सशक्त प्रभाव था। वास्तव में, जिस तरह श्रीरामकृष्ण परमहंस बिना किसी पुस्तकीय ज्ञान के वेदान्त के एक जीवन्त प्रतीक थे, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय जीवन के प्रतीक थे। अंग्रेज पहले ही आशंकित हो चुके थे। अलमोड़ा में पुलिस स्वामीजी की गतिविधियों पर दृष्टि रख रही थी। श्रीमती एरिक हेमंड को भेजे अपने पत्र में भगिनी निवेदिता ने लिखा, "आज सुबह एक भिक्षु को यह चेतावनी मिली थी कि पुलिस अपने गुप्तचरों के द्वारा स्वामीजी पर दृष्टि रख रही है। नि:संदेह, हम सामान्य रूप से इस बारे में जानते हैं। किन्तु अब यह और स्पष्ट हो गया है और मैं इसे अनदेखा नहीं कर सकती, यद्यपि स्वामीजी इसे गंभीरता से नहीं लेते हैं। सरकार अवश्य ही मूर्खता कर रही है या कम-से-कम तब ऐसा स्पष्ट हो जाएगा, यदि वह उनसे उलझेगी। वह पूरे देश को जगानेवाली मशाल होगी। मैं इस देश में जीनेवाली अब तक की सबसे निष्ठावान अंग्रेज महिला, उस मशाल से जागनेवाली पहली महिला होऊँगी।" हम स्वामीजी के शब्दों का प्रभाव कुख्यात 'विद्रोह कमेटी' की रिपोर्ट में देख सकते हैं, जो कहती है, "उनके (स्वामी विवेकानन्द के) लेखों और शिक्षाओं ने अनेक सुशिक्षित हिन्दुओं पर गहरी छाप छोड़ी है।"

प्रसिद्ध देशभक्त-क्रान्तिकारी ब्रह्मबांधव उपाध्याय और अश्विनीकुमार दत्त से चर्चा के दौरान हेमचन्द्र घोष ने १९०६ में टिप्पणी की, "मुझे अच्छी तरह याद है कि स्वामीजी ने मुझे बंगाली युवाओं की अस्थियों से एक ऐसा शक्तिशाली शस्त्र बनाने को कहा था, जो भारत को स्वतन्त्र करा सके।" अपनी प्रेरणादायी रचना 'द रोल ऑफ ऑनर : एनेक्डोट ऑफ इंडियन मार्टिअर्स' में कालीचरण घोष बंगाल के युवा क्रान्तिकारियों के मन पर स्वामीजी के प्रभाव के बारे में लिखते हैं, "स्वामीजी के संदेश ने बंगाली युवाओं के मन को ज्वलन्त राष्ट्रभक्ति की भावना से भर दिया और उनमें से कुछ में कठोर राजनैतिक गतिविधि की प्रवृत्ति उत्पन्न की।" स्वामी विवेकानन्द के देहान्त से पूर्व देश उन संगठनों के महत्त्व के प्रति जागरूक हो गया था, जो बड़े पैमाने पर शारीरिक उन्नति, खेल, तलवारबाजी, प्राण और लाठी के खेल, समाज सेवा, राहत कार्य आदि करते थे। १९०२ तक ऐसे संगठन उभर आए थे, जिनमें प्रखर राष्ट्रवाद के साथ ही 'एक आध्यात्मिक भावना' भी थी, जैसे सतीश मुखर्जी और पी. मित्रा के नेतृत्व में अनुशीलन समिति।

स्वामी विवेकानन्द के बौद्धिक जगत में तैयार किए विक्षोभ के वातावरण के विस्फोट का आभास उनके देहान्त के बाद बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेता के रूप में श्रीअरविंद के उद्भव के रूप में सामने आया। भगिनी निवेदिता ने स्वामी विवेकानन्द के देशभक्ति और राष्ट्रनिर्माण के आदर्शों को एक आधारभूत संबल प्रदान किया। १९१० में जब श्रीअरविंद को दूसरी बार बन्दी बनाने की चर्चा चली, तब निवेदिता की सलाह थी कि नेता घर से दूर रहकर भी घर जितना काम कर सकता है। इस सलाह ने उनके फ्रांसीसी उपनिवेश पांडिचेरी जाने का मार्ग प्रशस्त किया।

आकस्मिक परिवर्तन

हम राष्ट्रीय परिदृश्य पर स्वामी विवेकानन्द के उभरने से पहले की स्थिति पर एक दृष्टि डालें। अंग्रेजी शिक्षा, देसी साहित्य, भारतीय प्रेस, कांग्रेस सहित विभिन्न सुधार आन्दोलन और राजनीतिक संगठन अस्तित्व में आ चुके थे और उनका प्रभाव फैल चुका था। इन सबके बावजूद, एक सर्वव्यापी राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। अगर ऐसा नहीं होता, तो मद्रास से प्रकाशित होने वाला 'द हिन्दू' १८९३ की शुरुआत में हिन्दू धर्म के बारे में यह कैसे लिख सकता था, "यह मर चुका है और इसकी क्षमता नष्ट हो चुकी है।" पर इसी समाचार पत्र ने एंग्लो इंडियन और मिशनरी अखबारों सहित अन्य प्रकाशनों के साथ एक वर्ष (और बाद में भी) से भी कम समय में लिखा कि वर्तमान समय हिन्दूओं के इतिहास में पुनर्जागरण काल के रूप में वर्णित किया जा सकता है (मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज पत्रिका, मार्च १८९७)। इसे एक राष्ट्रीय विद्रोह का नाम दिया गया (मद्रास टाइम्स, २ मार्च, १८९५)। यह चमत्कार कैसे हुआ? हमें समकालीन विवरणों से जो एक उत्तर प्राप्त होता है, वह यह है कि स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो धर्म संसद में भाग लेते हुए वहाँ पर भारतीय धर्म और सभ्यता की महिमा का प्रचार किया और अपने देश की प्राचीन विरासत का बखान किया। इस तरह अपने देशवासियों में दीर्घकाल के खोए हुए आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को वापस लौटाया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, "मुझे गर्व है कि मैं ऐसे धर्म में पैदा हुआ हूँ, जिसने शताब्दियों से संसार का पथ-प्रदर्शन किया।" चेतनाहीन समाज को चैतन्य करना उनका सबसे बड़ा योगदान है।

जहाँ रामकृष्ण परमहंस की आध्यात्मिक साधना ने स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवादी कार्य के लिये शक्तिपुंज का कार्य किया, वहीं स्वामी विवेकानन्द के क्रान्तिकारी विस्तार भारत में सैकड़ों-हजारों राष्ट्रवादी कार्यों के लिये प्रेरणा सूत्र बने। स्वामीजी के विचारों तथा शिक्षा ने राष्ट्रीय जीवन और संस्कृति को काफी प्रभावित किया। भारतीय क्रान्तिकारियों की अनेक पीढ़ियाँ २०वीं सदी के प्रारम्भ से ही उनके उत्साहवर्धक व्याख्यानों तथा लेखन से व्यवहारत: उठ खड़ी हुईं और दृढ़ बनीं। सुप्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार के अनुसार, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का यदि किसी एक व्यक्ति को श्रेय जाता है, तो वे हैं विवेकानन्द। देश की आजादी की लड़ाई में महात्मा गाँधी से लेकर जितने बड़े नेता हुए, जिन्होंने देश को सब कुछ माना, उनके जीवन की प्रेरणा स्वामी विवेकानन्द थे। देशभक्ति से ओत-प्रोत स्वामीजी के भाषणों द्वारा पैदा की गई विचारों की चिंगारी का प्रभाव वीर सावरकर तथा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसे राष्ट्रभक्तों पर भी दिखाई देता है। अपने बृहत् काव्य सप्तर्षि में सावरकर जी ने लिखा कि 'निराशा के क्षणों में उन्हें विवेकानन्द के विचार ही प्रेरणा देते थे।"

१९०१ में वेल्लोर में हुये कांग्रेस अधिवेशन के समय तिलकजी लगातार ८ दिनों तक विवेकानन्द जी से मिलते रहे, तिलक के लेखों में उसके बाद ही दरिद्रनारायण शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

दक्षिण के सुप्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम भारती की प्रारम्भिक कविताओं में तमिल राष्ट्रवाद का उल्लेख मिलता है, किन्तु स्वामीजी के प्रभाव में आने के बाद जीवन के उत्तरार्ध में लिखी उनकी कविताएँ भारतीय हिन्दू राष्ट्रवाद का गुणगान करती हैं। वहीं दूसरी ओर, महान स्वतन्त्रता सेनानी और पत्रकार तथा युगान्तर के संस्थापकों में से एक बारींद्रनाथ घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द जी के छोटे भाई) को बंगाल में क्रान्तिकारी विचारधारा को फैलाने का श्रेय दिया जाता है। बारींद्रनाथ, श्रीअरविन्द घोष के छोटे भाई थे।

देशभक्ति का ज्वार

क्रान्तिकारी ब्रह्मबान्धव उपाध्याय ने बताया कि १९०१ में उनकी ढाका यात्रा के दौरान जब युवाओं का एक समूह उनसे मिला और परामर्श लिया, तो उन्होंने कहा, देशभक्ति और सनातन धर्म का अनुसरण करो। यह कोई संयोग नहीं

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

भारत की ऋषि परम्परा (२०)

स्वामी सत्यमयानन्द

प्रियव्रत

प्रथम मनु स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र हुए तथा अकूति, देवहूति और प्रसूति नाम की तीन पुत्रियाँ हुईं।

बचपन से ही प्रियव्रत शूरवीर थे। एकबार वे खिन्न हो गए कि भगवान सूर्य पृथ्वी के केवल आधे भाग को ही प्रकाशित करते हैं, जबकि आधे भाग में अन्धकार रहता है। उन्होंने संकल्प लिया कि वे शेष भाग को भी प्रकाशित करेंगे। उन्होंने अपना रथ लिया और पृथ्वी के चारों ओर सूर्य के पीछे भयंकर वेग से परिक्रमा करने लगे, किन्तु दोनों के मध्य बारह घण्टे का अन्तर था। उन्होंने पृथ्वी की सात परिक्रमाएँ कर डालीं। उनके वेग से इतनी दीप्ति और ऊष्मा प्रकट हुई कि पृथ्वी का शेष अन्धकारमय भाग प्रकाशित हो उठा। सूर्यदेवता, स्वर्ग और पृथ्वी पर रहने वाले लोग दिग्भ्रमित हो गए। ब्रह्मा ने प्रियव्रत को समझाकर उन्हें अपना रथ रोकने के लिए कहा। उनके रथ के पहियों से जो लीकें बनीं, वे सात समुद्र हो गए।

प्रियव्रत का पवित्र मन सदैव आत्म-चिन्तन में निमग्न रहता था। वे ध्यान में रत रहते थे। ध्यान के अतिरिक्त वे अपना समय वेदाध्ययन में व्यतीत करते थे। स्वाभाविक है कि प्रापंचिक कार्यों में फँसने की उनकी अनिच्छा हो गई थी। किन्तु स्वायम्भुव मनु के पुत्र के रूप में ख्याति प्राप्त होने के अलावा उन पर अनेक उत्तरदायित्व भी थे। उनमें से एक कार्य था – सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन और सृष्टि-विस्तार करना। उन्होंने अपने पिता की इस आज्ञा को अस्वीकार कर दिया। स्वायम्भुव मनु ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि वे प्रियव्रत को मनाएँ। ब्रह्माजी मरीचि, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि आदि ऋषियों के साथ प्रियव्रत के पास आए और उन्हें उपदेश दिया कि सभी कर्म शरीर, इन्द्रिय और मन के द्वारा होते हैं, आत्मा उनसे किंचित भी प्रभावित नहीं होती। उन्होंने प्रियव्रत को आशीर्वाद दिया कि उनके विवेक और ज्ञान में वृद्धि हो और यह आश्वासन दिया कि उन्हें किसी भी अवस्था में, यहाँ तक कि, अपने पिता द्वारा गृहस्थ-धर्म की आज्ञा का पालन करते हुए भी आत्मज्ञान की विस्मृति नहीं होगी।

प्रियव्रत ने विश्वकर्मा प्रजापति की कन्या बर्हिष्मती से विवाह किया। विष्णु पुराण में उनका नाम काम्या है। वे पवित्रता, ज्ञान और विवेक के महान गुणों से सम्पन्न थीं। दीर्घ काल तक इन दम्पती ने पृथ्वी का शासन किया, किन्तु

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

है कि स्वामी विवेकानन्द के महासमाधि होने के तीन वर्ष बाद ही उनके द्वारा प्रज्वलित अग्नि ने बंगाल के विभाजन के विरुद्ध एक विशाल आन्दोलन भड़का दिया था। स्वामी विवेकानन्द का आह्वान भारतीय स्वतन्त्रता हेतु संघर्षरत क्रान्तिवीरों के लिए एक मिशन बन गया। गाँधी, तिलक, नेहरू से लेकर राजाजी तक, सभी इस बात से सहमत थे कि स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का नैतिक और बौद्धिक आधार रखा।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – ''यदि हमारे समाज में, इस राष्ट्रीय जीवनरूपी जहाज में छिद्र हैं, तो आओ, हम उसकी संतानें, चलकर उन छिद्रों को बन्द कर दें, उसके लिए हँसते-हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। यदि हम ऐसा न कर सकें, तो हमारा मर जाना ही उचित है। हम अपना भेजा निकालकर उसकी डाट बनाएँगे और जहाज के उन छिद्रों में भर देंगे। पर उसकी कभी भर्त्सना न करें! इस समाज के विरुद्ध एक कड़ा शब्द तक न निकालें।'' स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं से ही प्रेरित होकर १९वीं शती में क्रान्तिकारी आन्दोलन, अनुशीलन समिति और युगान्तर का गठन हुआ।

रोमाँ रोलाँ बताते हैं, बेलूड़ मठ में एक व्याख्यान में महात्मा गाँधी ने स्वीकार किया था कि विवेकानन्द के अध्ययन और उनकी पुस्तकों ने उनकी देशभक्ति को बढ़ाया। इस प्रकार, भारत के सभी क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी आन्दोलन स्वामीजी की सिंह गर्जना - 'उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्ति तक रुको मत' के बाद ही शुरू हुए। ○○○

(पांचजन्य, जनवरी, २०१७ से साभार)

प्रियव्रत और उनकी सहधर्मिणी कभी भी सांसारिक प्रलोभनों में मोहित नहीं हुए। उनके दस पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। इनमें से तीन सन्तान मेधस, अग्निबाहु और पुत्र ने युवावस्था में ही योग और संन्यास का मार्ग ग्रहण किया। प्रियव्रत को अपनी युवावस्था में इस मार्ग का अनुसरण करने से रोका गया था, किन्तु उन्होंने अपने पुत्रों को सहर्ष आशीर्वाद दिया।

समय बीतता गया। प्रियव्रत की दीर्घकालीन दबी हुई आत्मचिन्तन की स्वाभाविक प्रवृत्ति पुनर्जागृत होने लगी। उन्होंने अपने सात पुत्रों को राज्य बाँटा और स्वयं वानप्रस्थी का जीवन व्यतीत करने चले गए। वे अपना समय वानप्रस्थ आश्रम के अनुरूप व्रत, उपवास इत्यादि में बिताने लगे और अन्तिम समय में मुक्ति को प्राप्त हुए।

जडभरत

प्राचीन काल के राजर्षि भरत के नाम से यह देश भारतवर्ष और हम भरतवंशी कहलाते हैं। ऋग्वेद में बहुधा एक वीर राजा का वर्णन आता है जिनके वंशज भारत कहलाए। जडभरत की कथा वहीं से आरम्भ होती है।

भरत नामक दो अन्य प्रसिद्ध राजाओं का वर्णन भी प्राप्त होता है। उनमें से एक रामभ्राता भरत थे। दूसरे प्रसिद्ध पुरु वंश के राजा दुष्यन्त और शकुंतला के पुत्र राजा भरत थे। भरत के वंशज भारत कहलाए, यह नाम विशेष रूप से पाण्डवों के लिए भी उपयोग किया जाता था। पाण्डवों में भी अर्जुन को 'भरतर्षभ' का विशिष्ट सम्मान प्राप्त था।

पौराणिक कथाओं में जडभरत की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसकी रोचकता स्वाभाविक है, क्योंकि शास्त्र और विशेषकर भगवद्गीता के पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन इस कथा के माध्यम से भलीभाँति संपुष्ट होता है। नरेन, जो परवर्तीकाल में स्वामी विवेकानन्द हुए, उन्होंने भी एक बार जडभरत का दृष्टान्त देकर श्रीरामकृष्ण देव को उलाहना दिया था कि यदि वे उनके बारे में अधिक सोचेंगे, तो उन्हें भी उसी प्रकार बन्धन में पड़कर पुनर्जन्म लेना पड़ेगा। श्रीरामकृष्ण यह सुनकर चिन्तित हुए और माँ काली के मन्दिर में जाकर उन्होंने यह बात माँ को बताई। माँ काली ने कहा कि श्रीरामकृष्ण नरेन में नारायण देखते हैं, इसलिए वे उनके प्रति आकर्षण का बोध करते हैं।

परवर्तीकाल में स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के कैलिफोर्निया में जडभरत पर व्याख्यान दिया था। स्वामीजी के शब्दों में ही इस कथा का वर्णन करते हैं –

''प्राचीन काल में भरत नाम के एक महान प्रतापी सम्राट भारत में राज्य करते थे। विदेशी लोग जिस देश को 'इण्डिया' कहते हैं, उसे उस देश की सन्तानें भारतवर्ष कहती हैं। प्रत्येक हिन्दू के लिए विधान है कि वृद्धावस्था में पदार्पण करते ही वह सर्वस्व त्याग कर, इस संसार का समस्त भार – ऐश्वर्य, धन सम्पत्ति अपने पुत्र के लिये छोड़ वनगमन करे और वहाँ अपने यथार्थस्वरूप अत्मा का चिन्तन करते-करते इस संसार के मोहों से मुक्ति प्राप्त करे। राजा अथवा रंक, कृषक अथवा किंकर, नर अथवा नारी – सभी इसी प्रकार कर्तव्यबद्ध हैं; क्योंकि गृहस्थ के सारे कार्य – पुत्र, बन्धु, पति, पिता, स्त्री, पुत्री, माता और भगिनी, सबके कर्तव्य कर्म – केवल उसी एक अवस्था की ओर ले जाने वाले सोपान मात्र हैं, जिसमें मनुष्य के जड़ बन्धन चिर काल के लिए टूट जाते हैं और वह मुक्त हो जाता है।
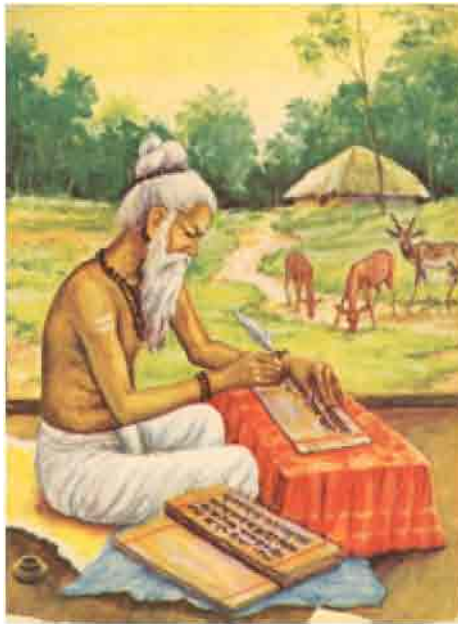
सम्राट भरत भी इसी प्रकार अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप कर वनवास करने चले गये। जो किसी समय कोटि-कोटि प्रजाजनों पर शासन करते थे, संगमरमर के सुवर्ण-रजत-मण्डित राजप्रसादों में वास करते थे, जो रत्नजड़ित चषकों से मदिरा-सेवन करते थे, वे ही आज वन में अपने ही हाथों से हिमगिरि के स्रोतस्विनी के तीर पर घास-फूस की छोटी-सी कुटी बनाकर निवास करने लगे। अपने परिश्रम से प्राप्त किये हुए कन्द-मूलों का आहार करते हुए महाराज भरत अपना जीवन उस अन्तर्यामी परमात्मा के ध्यान और चिन्तन में बिताने लगे, जो प्रत्येक मनुष्य में साक्षी रूप से विद्यमान है। इस प्रकार दिन, मास और वर्ष बीतने लगे।

एक दिन, जहाँ राजर्षि ध्यानावस्था में बैठे थे, वहीं एक हरिणी पानी पीने आयी। इसी क्षण कुछ दूरी पर एक सिंह ने गर्जना की। हरिणी इतनी भयभीत हो गयी कि तृष्णा

शान्त किये बिना ही, उसने नदी पार करने के लिए छलांग मारी। हरिणी गर्भवती थी, और इस श्रम और भय के कारण उसने तत्काल एक शावक प्रसव कर प्राण छोड़ दिये। मृग-शावक नदी में गिर पड़ा और तीव्र जल-धारा में बहने लगा। उसी समय राजर्षि भरत की दृष्टि उस पर पड़ी। ये ध्यानावस्था से उठकर उसकी रक्षा करने नदी में कूद पड़े। मृग-शावक को कुटी में ले जाकर उन्होंने अग्नि प्रदीप्त की, और अपनी स्नेहपूर्ण हथेलियों से सहला-सहला कर उसकी मूर्च्छा दूर की। करुणाविह्वल हो राजर्षि ने शावक की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया और स्वयं ही हरित तृण एवं फल संग्रह कर उसका लालन-पालन करने लगे। वनवासी राजा का पितृवत् स्नेह पाकर मृग-शावक दिन-दिन बड़ा होकर एक सुन्दर हरिण बन गया और राजर्षि, जिन्होंने जीवन के सम्पूर्ण मोह, अधिकार, सम्पदा और कौटुम्बिक स्नेह के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी, सरिता जल से उद्धार किये हुए इस मृग-शावक के मोह पाश में बद्ध हो गये। ज्यों-ज्यों वे उससे अधिकाधिक स्नेह करने लगे, त्यों-त्यों उनका ईश्वर-चिन्तन और उपासना कम होती गयी। जब हरिण वन में चरने चला जाता और उसके लौटने में कुछ विलम्ब हो जाता, तो राजर्षि चिन्तातुर और दुखी हो जाते। वे सोचते – कहीं मेरे प्यारे मृग-शावक पर किसी सिंह ने आक्रमण तो नहीं कर दिया, उसका कुछ अनिष्ट तो नहीं हो गया, उसे आज क्यों इतनी देर हो गयी?

इस प्रकार कुछ वर्ष बीत गये और महर्षि का मृत्यु-काल समीप आ गया। मरणासन्न होने पर भी, उनका मन आत्म-चिन्तन में मग्न न था। वे हरिण के विषय में सोच रहे थे और अपने प्रिय शावक की शोक-विह्वल आँखों पर दृष्टि स्थिर रखते हुए ही परलोकवासी हो गये। फलस्वरूप उन्हें मृग रूप धारण कर पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ा। किन्तु कर्म नष्ट नहीं होता है, पूर्वजन्म के सुकृतों का फल उन्हें प्राप्त हुआ। यह हरिण जन्मत: ही जातिस्मर था; और यद्यपि यह वाचाहीन और चतुष्पाद था, उसे अपने पूर्वजन्म की सब घटनाएँ स्मरण थीं। वह अपने सहचरों का साथ छोड़ स्वभावत: तपोवनों के समीप चरने जाता, जहाँ यज्ञ-होम और उपनिषद-पाठ होते रहते थे।

आयु पूर्ण होने पर मृगरूपी भरत ने पंचत्व प्राप्त किया और पुन: एक धनी ब्राह्मण के कनिष्ठ पुत्र के रूप में जन्म लिया। इस जीवन में भी उन्हें अपने पूर्व जन्म का विस्मरण नहीं हुआ था। उन्होंने अपने बाल्य काल में ही जीवन के पाप-पुण्य के पाशों से दूर रहने का निश्चय कर लिया। समय बीतते बालक स्वस्थ और बलवान हो गया, पर वह एक शब्द भी नहीं बोलता था और संसार के मोह-मायापूर्ण कार्यों में न फँसने के लिए वह जड़-मूढ़ और पागल-सा रहने लगा। उसके हृदय में सदा अनन्त ब्रह्म का चिन्तन चलता रहता था और अपने प्रारब्ध कर्म क्षय करने के लिये ही वह जीवन बिता रहा था। कालक्रम से उसके पिता की मृत्यु हो गयी और पुत्रों ने परस्पर में सम्पत्ति का बँटवारा कर लिया। कनिष्ठ भ्राता को मूक और अकर्मण्य समझकर उसका भी हिस्सा वे निगल गये। वे उसे केवल जीवन निर्वाहार्थ अन्न प्रदान कर देते थे। बस, केवल यहीं तक उनका उस पर अनुग्रह था। उसकी भाभियाँ भी सदैव उससे अत्यन्त कर्कश व्यवहार करती थीं। वे उससे सारे कठिन काम करवाती थीं और यदि वह उनकी इच्छानुसार काम न करता, तो उससे अत्यन्त कठोर व्यवहार करती थीं। किन्तु वह न तो कभी चिढ़ा और न डरा ही, एक शब्द भी न बोलते हुए धैर्यपूर्वक सब सहता गया। जब वे उसे बहुत परेशान करतीं, तो वह घर से दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे भाभियों का क्रोध शान्त होने तक बैठा रहता और फिर चुपचाप घर लौट आता।

एक दिन उसकी भाभियों ने उसके प्रति अत्यन्त नृशंस व्यवहार किया। भरत बिना कुछ बोले घर से निकल गये और किसी वृक्ष की छाया तले विश्राम करने लगे। दैवयोग से उस देश का राजा (रहूगण) उसी मार्ग से पालकी पर बैठकर जा रहा था। पालकी ढोने वाले कहारों में से एक अचानक ही अस्वस्थ हो गया, इसीलिए उसके भृत्यगण रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए किसी मनुष्य की खोज में इधर-उधर देख रहे थे। वृक्ष के नीचे बैठे भरत को देख वे वहाँ आये और उन्हें हट्टा-कट्टा देखकर बोले, "राजा का एक शिविका-वाहक अस्वस्थ हो गया है। क्या तुम उसके स्थान पर काम करोगे?" भरत कुछ न बोले। उन्हें इतना स्वस्थ देखकर, राजा के भृत्यों ने बलपूर्वक पकड़ लिया और पालकी ढोने को बाध्य किया। भरत भी नि:शब्द शिविका-वहन करने लगे। किन्तु शीघ्र ही राजा ने देखा कि पालकी की गति और दिशा सम नहीं है। पालकी में से झाँककर राजा ने नये वाहक को सम्बोधित कर कहा, "अरे मूर्ख ! जा आराम कर। यदि तेरे कन्धे दुख रहे हैं, तो थोड़ा

आराम कर ले।'' तब भरत ने पालकी नीचे रखकर जीवन में प्रथम बार अपना मौन भंग किया और बोले, 'हे राजन् ! आपने किसे मूर्ख कहा है? किसे आप शिविका रखने का आदेश दे रहे हैं? आप किसे क्लान्त कह रहे हैं? किसे 'तू' कहकर सम्बोधन कर रहे हैं? राजन् ! यदि 'तू' से आपका अर्थ यह मांस-पिण्ड है, तो यह उसी पदार्थ से बना है, जिससे आपकी देह, यह अचेतन और जड़ है – इसे थकावट और पीड़ा का कैसे ज्ञान होगा? यदि आपका अर्थ मन है, तो यह आपके मन जैसा ही है, यह सर्वव्यापी है। किन्तु यदि 'तू' शब्द से आपका लक्ष्य इससे भी परे किसी वस्तु से है, तो वह केवल आत्म-तत्त्व ही हो सकता है, जो मेरा यथार्थ स्वरूप है, जिसकी सत्ता आप में भी है और जो विश्व में 'एकमेवाद्वितीय' है। राजन् ! क्या आप सोचते हैं कि आत्मा कभी क्लान्त भी होती है? क्या आप कहना चाहते हैं कि आत्मा कभी आहत भी होती है? राजन् ! मैं – यह शरीर – धरती पर रेंगने वाले इन कीड़ों को पैरों तले कुचलना नहीं चाहता था और इसलिए उनकी रक्षा के यत्न में पालकी की गति विषम हो गयी थी। किन्तु आत्मा कभी क्लान्त और व्यथित नहीं होती, उसे कभी दुर्बलता प्रतीत नहीं होती और न उसने शिविका-भार ही वहन किया, क्योंकि आत्मा तो सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।'' इस प्रकार भरत ने आत्मा का स्वरूप, पराविद्या आदि विषयों का ओजस्वी वाणी में बड़ी देर तक विवेचन किया। अपने ज्ञान और विद्वत्ता का राजा को अत्यन्त अभिमान था, पर भरत के ये शब्द सुनकर उसका गर्व चूर्ण हो गया। पालकी से उतरकर उसने भरत के चरणों में प्रणाम किया और कहा, ''महाभाग ! मुझे क्षमा करें, आपको शिविका-वहन में नियुक्त करते समय मैं नहीं जानता था कि आप एक सिद्ध पुरुष हैं।'' भरत राजा को आशीर्वाद देकर विदा हो गये और पुन: पूर्ववत् जीवन-यात्रा शुरू कर दी। देह-त्याग होने पर भरत आवागमन के बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो गये।'' (विवेकानन्द साहित्य, ७.१६९)

इस प्रसंग के पूर्व जडभरत जी के बारे में एक और रोचक घटना है। एकबार जडभरत अपने भाइयों के खेत की रखवाली कर रहे थे। उन्हें सुनाई दे रहा था कि कुछ चाण्डाल लोग सन्तान-जन्मोत्सव मना रहे हैं। उनमें से कुछ लोग माँ काली को बलि देने हेतु एक व्यक्ति को बाँधकर ले जा रहे थे। वह व्यक्ति उनके चंगुल से छूटने का बहुत प्रयत्न कर रहा था और किसी प्रकार संघर्ष करते वहाँ से बच निकला। चाण्डाल लोग नशे में मत्त थे और उसे पकड़ न सके। क्रोधित होकर वे बलि हेतु किसी अन्य व्यक्ति को ढूँढ़ने लगे, क्योंकि माँ काली को बलि देने की प्रतिज्ञा उन्हें पूरी करनी थी।

चाण्डालों ने देखा कि जडभरत शान्तचित्त होकर पेड़ के नीचे बैठे हुए हैं और खेत की निगरानी कर रहे हैं। उन्होंने जडभरत को पकड़ा और बाँधा। उन्होंने भी कोई आनाकानी नहीं की। बलि के लिए मनुष्य मिल जाने से चाण्डाल लोग उत्साह में आ गए और उसे मन्दिर ले गए। जैसे ही उन्होंने मन्दिर के प्रांगण में प्रवेश कर जडभरत को माँ काली के सामने बलि-वेदी पर रखा, तब पूरी पृथ्वी में कम्पन होने लगा और आकाश में घोर कड़कड़ाहट की ध्वनि सुनाई दी। माँ काली, जिनका रूप घोरनिशा सदृश और तेज सहस्र सूर्यों के समान था, मूर्ति से प्रकट हुईं और भयंकर निनाद किया। चाण्डालों का नशा अब चूर-चूर हो गया। निमेष मात्र में ही माँ काली ने उन सबका संहार कर दिया। इस पूरे घटनाक्रम में जडभरत उसी अवस्था में निश्चल रहे। जिन रस्सियों से वे बँधे हुए थे, वे खुल गईं। श्रद्धाभाव से खड़े होकर वे माँ का करुणामय मुख निहारने लगे और उनके चरणों में प्रणत हुए। माँ काली ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अदृश्य हो गईं। उसी प्रणत अवस्था में कुछ देर रहने के बाद वे खड़े हुए और पुन: अपने खेत की निगरानी करने चले गए, मानो कुछ हुआ ही न हो।

ब्रह्मज्ञ ऋषि जडभरत की कथाएँ आज भी बड़े आनन्दपूर्वक भारत के लोगों अर्थात् भरतवंशियों द्वारा कही-सुनी जाती हैं। **(क्रमश:)**

मेरे बच्चो ! याद रखना कि कायर तथा दुर्बल लोग ही पापाचरण करते हैं और झूठ बोलते हैं। साहसी तथा शक्तिशाली लोग सदा ही नीतिपरायण होते हैं। नीतिपरायण, साहसी तथा सहानुभूति-सम्पन्न बनने का प्रयास करो।

– स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

१०३. जिसकी रही भावना जैसी

एक बार एक छोटे-से राज्य को जीतने के लिये एक अन्य राजा दलबल के साथ आ पहुँचा। राजा ने इस बात पर विचार करने के लिये एक महासभा बुलाई कि शत्रु के हाथों से कैसे बचा जाय। सभा में इंजीनियर, बढ़ई, चर्मकार, लोहार, वकील, पुरोहित आदि सभी उपस्थित थे।

इंजीनियर बोला, 'नगर के चारों ओर एक चौड़ी खाई खुदवा दीजिये।' बढ़ई बोला, 'लकड़ी की दीवार खड़ी कर दी जाय।' चर्मकार ने कहा, 'चमड़े जैसी मजबूत दूसरी कोई भी चीज नहीं है, अत: चमड़े का घेरा बना दिया जाय।' लोहार बोला, 'इन सबसे काम नहीं होगा; लोहे की दीवार ही अच्छी है, उसे तो गोले-बारूद से भी छेदा नहीं जा सकेगा।' वकील बोला, 'ऐसा कुछ भी करने की जरूरत नहीं है; शत्रु को तर्क के द्वारा समझा दिया जाय कि उसे हमारा राज्य लेने का कोई अधिकार नहीं है।' पुरोहित ने कहा, 'तुम सभी पागलों-जैसी बातें करते हो। होम-हवन करो, ग्रह-शान्ति करो, तुलसी-पूजा करो; तो फिर शत्रु लोग बाल भी बाँका न कर सकेंगे।'

इस प्रकार राज्य को बचाने का कोई उपाय निश्चित करने के स्थान पर, वे सभी अपना-अपना मत लेकर घोर तर्क-वितर्क में लग गये। मनुष्य का ऐसा ही स्वभाव है। (पावन स्मृतियाँ)

१०४. रोग और रोगी दोनों से छुटकारा

सभी धर्मों के उपदेशों को पढ़कर मन में सामान्यत: यही भावना उठती है कि शायद आत्महत्या कर लेना ही बेहतर होगा। जीवन के दुखों का प्रतिकार क्या है? इस प्रश्न का जो उत्तर दिया जाता है, उससे तो आपातत: यही बोध होता है कि जीवन का त्याग कर देना ही इसका एकमात्र उपाय है। इस सन्दर्भ में मुझे एक प्राचीन कथा याद आती है।

किसी के मुँह पर मच्छर बैठा था। उसके एक मित्र ने उस मच्छर को मारने के लिए उसके मुँह पर इतने जोर का घूँसा मारा कि मच्छर के साथ ही वह मनुष्य भी मर गया! दुख के प्रतिकार का उपाय भी मानो ठीक इसी प्रकार का संकेत देता है। जीवन और जगत दुखमय हैं, यह एक ऐसा तथ्य है, जिसे जगत को जानने का साहस करनेवाला कोई व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। (१४८)

१०५. निराकार भी सत्य है और साकार भी

बचपन की एक बात मुझे यहाँ याद आती है। एक ईसाई पादरी कुछ लोगों की भीड़ जमा करके अपने धर्म का उपदेश दे रहा था। अनेक मजेदार बातों के साथ वह पादरी यह भी कह गया, ''अगर मैं तुम्हारे भगवान की मूर्ति को एक डण्डा लगाऊँ, तो वह मेरा क्या बिगाड़ सकती है?''

एक श्रोता ने चट चुभता सा जवाब दे डाला, ''अगर मैं तुम्हारे ईश्वर को गाली दे दूँ, तो वह मेरा क्या बिगाड़ सकता है?'' पादरी बोला, ''तुम्हारे मरने के बाद वह तुम्हें सजा देगा।'' हिन्दू भी तनकर बोल उठा, ''तुम मरोगे, तब ठीक उसी तरह हमारी मूर्ति भी तुम्हें दण्डित करेगी।''

वृक्ष की कीमत उसके फलों द्वारा निर्धारित होती है। जब मैं मूर्तिपूजक कहलानेवालों में ऐसे लोगों को देखता हूँ, जिनकी नैतिकता-आध्यात्मिकता तथा प्रेम की बराबरी नहीं की जा सकती, तब मैं रुककर स्वयं से यही पूछता हूँ, 'क्या पाप से भी कभी पवित्रता उत्पन्न हो सकती है?'

अन्धविश्वास मनुष्य का घोर शत्रु है, पर धर्मान्धता तो उससे भी बड़ी शत्रु है। ईसाई गिरजाघर क्यों जाता है? क्रूस क्यों पवित्र है? प्रार्थना के समय आकाश की ओर मुँह क्यों किया जाता है? कैथोलिक ईसाइयों के गिरजाघरों में इतनी मूर्तियाँ क्यों रहा करती हैं? प्रोटेस्टेंट ईसाइयों के मन में प्रार्थना के समय इतनी मूर्तियाँ क्यों रहा करती हैं? मेरे भाइयो, मन में किसी मूर्ति के बिना आये कुछ सोच सकना वैसे ही असम्भव है, जैसे कि श्वास लिये बिना जीवित रह पाना। (१/१६-१७)

श्रीकृष्णप्राप्ति हेतु देवकी-वसुदेव जैसा कष्ट सहना होगा

श्रीकृष्ण जनमाष्टमी विशेष

स्वामी सत्यरूपानन्द

कलियुग ने जब राजा परीक्षित से रहने का स्थान माँगा, तो उन्होंने उसे स्वर्ण में रहने का स्थान बताया। राजा परीक्षित स्वयं सोने का मुकुट धारण किये हुए थे, इसलिए कलियुग तत्काल उनके मुकुट में प्रविष्ट हो गया। मुकुट उनके सिर पर था, इसलिए उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। उसके बाद उन्हें ऋषि के साथ किये गये अपराध के कारण श्राप का भागी होना पड़ा था। बाद में भगवान के कथा-श्रवण से उनका उद्धार हुआ।

आज भी वह कलियुग सोने में बसता है। राजा परीक्षित के सिर में था, पर जिनके पैरों में सोना है उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जिनके पास नहीं हैं, बैंकों के लॉकर्स में सोने रखे हैं, उनकी भी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । ऐसा कलियुग का, उस सोने का प्रभाव है । परीक्षित ने भगवान की कथा सुनी, लेकिन लोग भगवान की कथा नहीं सुनते, बल्कि उस सोने की रक्षा में ही लगे रहते हैं।

भगवान कृष्ण का आविर्भाव, उनकी कथा जीव-कल्याण के लिये है। उनकी वृन्दावन गोपी-लीला मानव को भगवद्भक्तिरस से परिपूर्ण करने के लिये है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, वृन्दावन की लीला को समझने के लिये, गोपियों की लीलाओं को समझने के लिए, हृदय को काम-गंधशून्य होना चाहिए। जैसे बर्तन को तपाने से उसमें से लहसुन की दुर्गन्ध चली जाती है, वैसे ही साधक अपने प्रयत्न से सम्भव है कुछ काल के लिए वासनाओं से मुक्त या रिक्त हो जाये, किन्तु वासना की गंध तब तक नहीं जाती, जब तक कि ज्ञान की अग्नि से हृदय शुद्ध न हो। एक दूसरा उपाय है, भगवद्भक्ति और भगवान की लीला-कथा तथा भगवान के विरहाग्नि से भी चित्त शुद्ध होता है, जैसा गोपियों के जीवन में हमें मिलता है।

भगवान कृष्ण के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में कहा गया है – **कृष्णास्तु भगवान् स्वयं**। स्वयं भगवान कृष्ण के रूप में आये। उन्होंने वृन्दावन में, मथुरा में, द्वारिका में, कुरुक्षेत्र में लीला की और उसके पश्चात महाप्रयाण किया।

भगवान कहाँ रहते हैं? भगवान से भेंट कहाँ होगी? भगवान का स्मरण करने पर हमें क्या लाभ होगा? इन प्रश्नों के उत्तर श्रीमद्भगवद्गीता में दिए गए हैं –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

हे अर्जुन, प्रत्येक प्राणी के हृदय में ईश्वर विद्यमान हैं। वे क्या करते हैं?

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

जैसे किसी यंत्र में, मोटर या रेलगाड़ी में बैठकर ड्राइवर उस गाड़ी के इंजन को चलाता है, वैसे ही भगवान हृदय में विराजमान होकर सभी प्राणियों को घुमाते रहते हैं। भगवान माया के चक्र में हमको घुमा रहे हैं, इसलिए उनका एक नाम मायाधीश भी है। माया भगवान को नहीं घुमा सकती। यदि किसी प्रकार हम भगवान को पकड़ सकें, तो माया हमको भी नहीं घुमा सकेगी। कृष्ण-जन्माष्टमी के दिन भगवान से जुड़कर मायाचक्र से छुटने का प्रयत्न करना चाहिए ।

भगवान का प्राकट्य तो सब जगह होता है –

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना।।

भगवान आपमें, मुझसें, सबमें, कण-कण में विराजमान हैं। किन्तु सर्वत्र विराजित भगवान जब तक मेरे अन्तःकरण में प्रकट नहीं होते हैं, तब तक हम उनके दर्शन बाहर कर सकते हैं। कृष्ण जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में हमें इस दिशा में प्रयत्न करना होगा कि भगवान का जन्म हमारे हृदय में हो। हृदय में भगवान का जन्म कब होगा और हम कैसे जानेंगे?

माता देवकी और वसुदेव कंस के कारागार में थे। कंस उग्रसेन का पुत्र था। कंस की आसुरी वृत्ति थी। यदि कंस के चरित्र को देखें, तो निस्संदिग्ध रूप से यह बात समझ में आयेगी कि कंस वही सब करता था, जो आज हम लोग

करते हैं। जो लोग ईश्वर में विश्वास नहीं करते, पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते, परलोक में विश्वास नहीं करते, ऐसे लोग और जो यह समझते हैं कि तथाकथित विज्ञान के आधार पर पंच-इन्द्रियों से मिलने वाला सत्य ही सत्य है, तो वे सावधान हो जाएँ। कंस के लिए कोई सत्य नहीं था। एक शब्द में वह भौतिकवादी था, भोगवादी था। उसके सम्बन्धी कौन थे? जरासंध उसके ससुर थे। जरासंध परम भोगवादी था। उसने भी शक्तिप्राप्त करने के लिये अनेक राजाओं को पकड़कर रखा था।

भोगवादी लोग अपने सुखों के लिये दूसरों का अहित करने में भी नहीं हिचकते हैं, ये कंस के वंशधर हैं। ऐसे लोग आज समाज में देखने को मिलते हैं। कंस के वंशधरों की कमी नहीं है। कंस भगवान के माता-पिता वसुदेव-देवकी को जेल में डाल देता है। वैसे ही कंसवृत्ति के लोग सज्जनों को, भगवान के भक्तों को, जिनसे भगवत कृपा मिलेगी, भगवान प्रकट होंगे, उन्हें कष्ट देते हैं। वसुदेव और देवकी भक्ति और ज्ञान के ही प्रतीक हैं। जिनकी कृपा से हमको भगवान के दर्शन होंगे, ऐसे लोगों को जेल में रखना इन कंसवादियों का काम है।

जब देवकी-वसुदेव जेल में थे, तब भाद्रपद मास की अष्टमी को रात में कृष्ण भगवान प्रकट हुए। उस रात आकाश में घनघोर घटा छायी हुई थी, एकदम अँधेरा था, घोर वर्षा हो रही थी, किन्तु भगवान जब प्रगट हुए, तो एकदम वह कक्ष प्रकाशित हो गया । देवकी और वसुदेव की बेड़ियाँ खुल गयीं, जेल के दरवाजे खुल गये, सभी प्रहरी गहरी नींद में सो गये । तब वसुदेव उन्हें मथुरा से वृन्दावन ले जाने में समर्थ हुए। यह भगवान के आविर्भाव की कथा है। इस कथा का तात्पर्य आपके-हमारे लिये साधना की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

हमारे हृदय का अंधकार या उग्र भौतिक-वृत्ति, यही कंस का कारागार है। हमारा हृदय कंस का कारागार है, जिसमें हम भगवान को बंद करके या वह उत्पन्न ही न हो, इस प्रयत्न में लगे हैं। भगवान जब हमारे जीवन में आयेंगे, तो क्या होगा? हृदय में ज्ञान का प्रकाश होगा। ज्ञान-प्रकाश से क्या होगा? बन्धन की बेड़ियाँ छूट जायेंगी। उपनिषद में कहा गया है –

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

भगवान कृष्ण का आविर्भाव हृदय में होगा, तो हमारे हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जायेंगी। हमारा हृदय वैकुण्ठ हो जायेगा। भगवान कहाँ रहते हैं? भागवत में कहा है कि भगवान वैकुण्ठ में रहते हैं। इसका क्या तात्पर्य है? हमलोग हृदय की कुण्ठा से परिचित हैं। **विगताः कुण्ठाः यस्य सः वैकुण्ठः।** संस्कृत में इसका तात्पर्य विद्वान लोग बताते हैं कि जिसकी कुण्ठाएँ चली गयी हैं, वह वैकुण्ठ है। जब हमारे हृदय की कुण्ठाएँ चली जायेंगी, तो हमारा हृदय ही वैकुण्ठ हो जायेगा और उसमें भगवान विराजमान हो जायेंगे।

भगवान हमारे हृदय में आविर्भूत हों, इसके लिए हमें क्या करना पड़ेगा? भगवान के माता-पिता देवकी और वसुदेव के समान हमें साधना करनी पड़ेगी। सब कुछ कष्टों को स्वीकार करते हुए, सत्यनिष्ठापूर्वक वसुदेव-देवकी कंस के कारागार में रहे। वसुदेव जानते थे कि कंस उनकी प्रत्येक संतान का वध करेगा। संतान का जन्म होने के बाद वह स्वयं कंस के पास लेकर जाते थे। उन्होंने सत्य की निष्ठा का पालन किया। देवकी और वसुदेव ने जो कष्ट सहे, वही कष्ट हमको भी सहने को प्रस्तुत होना पड़ेगा।

यदि हम जीवन में कष्ट सहने को तैयार नहीं हैं तो उच्च जीवन नहीं हो सकता है। हम कंस की श्रेणी में आ जायेंगे, कंस के दल में आ जायेंगे। हम दन्तवक्र, शिशुपाल, जरासंध के दल के हो जायेंगे। भगवान के निकट सम्बन्धी होने के बावजूद भी भगवान के शत्रु हो जायेंगे और भगवान को स्वयं हमें मारना पड़ेगा। दन्तवक्र और शिशुपाल दोनों फुफेर भाईयों का वध भगवान ने ही किया। पर दूसरे पाँच फुफेरे भाइयों, पाण्डवों के साथ जन्मभर रहे, क्योंकि ये भगवान के पक्ष में थे।

जन्माष्टमी के पवित्र दिन पर निर्णय करें कि हम किसके साथ रहना चाहते हैं? क्या हम सब प्रकार की सुविधाएँ लेकर कंस के पक्षधर बनना चाहते हैं या कष्ट सहकर भगवान कृष्ण के पक्षधर बनना चाहते हैं? कंस के पक्ष में रहेंगे, तो महाविनाश होगा। कृष्ण के पक्ष में होंगे, तो अन्तिम विजय अवश्य हमारी होगी। **यतो धर्मस्ततो जयः, यतो कृष्णः ततो धर्मः** – जहाँ धर्म है वहीं विजय है और जहाँ कृष्ण हैं वहीं धर्म है। ○○○

चरित्र

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

चरित्र मनुष्य की अनभिव्यक्त अथवा प्रच्छन्न अवस्था है। मनुष्य का अस्तित्व उसके सम्पूर्ण अतीत काल की समष्टि है। इतिहास की भव्य महत्ता का भी यही रहस्य है। जैसे मनुष्य को अपना शरीर उसे अपने पूर्वजों से प्राप्त होता है, न किसी दूसरे से, वैसे ही भविष्य अतीत के अनुरूप ही होता है।

किन्तु भविष्य केवल भूतकाल के कुछ अंश मात्र से निर्मित नहीं होता। वह तो भूतकाल की ही समष्टि से उत्पन्न एवं लालित-पालित होता है। वास्तव में इसे ही कर्म का सिद्धान्त कहा जाता है। प्राच्य पुनर्जन्मवाद पर विश्वास करता है एवं अपने इस अद्भुत सिद्धान्त द्वारा वह जीवन में ज्ञान और विवेक प्राप्त करता है। मनुष्य की संस्कारगत प्रवृत्तियों के विषय में जितना प्राच्य व्यक्ति समझ सकता है, उसे अन्य लोग समझ नहीं सकते। वह मनुष्य के भाव और आकांक्षाओं को ग्रहण कर सकता है। मनुष्य के अचेतन कार्यों द्वारा वह उसके अतीत को जान लेता है। एक गुलाम को भी राज-सिंहासन अकस्मात प्राप्त हो सकता है। किन्तु उसकी राजपोशाक के पीछे पीठ पर लगे चाबुकों के निशान एक तीक्ष्ण दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति की दृष्टि से छिप नहीं सकते। इसके विपरीत आज का एक दास अनेक बार सम्राट बना हो सकता है, किन्तु उसकी वाणी में आदेश की प्रतिध्वनि, संकटकाल में निर्णय लेने की क्षमता और अपमान के क्षणों में उसके धधकते स्वाभिमान को अवश्य ही एक तीव्र दृष्टि वाला व्यक्ति ध्यान देगा।

मनुष्य के प्रत्येक कर्म में ही उसका पूर्ण व्यक्तित्व परिलक्षित होता है, हो सकता है कि संसार उसे सहज में न पढ़ सके। महान आंकाक्षा कभी व्यर्थ नहीं होती। उच्च संकल्प कभी व्यर्थ नहीं होता। जैसे मनुष्य अपने प्रत्येक कर्म द्वारा अभिव्यक्त होता है, वैसे ही चरित्र द्वारा उसका जीवन अभिव्यक्त होता है। इसलिए यह चरित्र ही जीवन की कुंजी है। केवल आध्यात्मिक सत्य ऐसे हैं, जिनका क्रम कभी नहीं बदलता। "हम वर्तमान में जो कुछ हैं, अपने विचारों की ही परिणति हैं।" जैसे कि इंजिनीयर लोग कहते हैं कि जल अपने स्तर पर अपने आप पहुँचता है, ठीक वैसे ही मनुष्य के मन के विषय में है। यदि हम श्रेष्ठता की ओर एक कदम सफल होते हैं, तो हमारे सम्मुख लाखों अवसर उपस्थित हो जाते हैं। हम जितनी ऊँचाई तक किसी एक पर्वत पर चढ़ लेते हैं, उतनी ही ऊँचाई बिना रुके और बिना किसी बाधा के हम जिस किसी भी पर्वत पर पाँव रखेंगे, वहाँ पहुँच जाएँगे। जो व्यक्ति अपने साम्राज्य का शासन करता है, वह और कुछ नहीं, किन्तु उसके अपने बचपन में खेले गए खेलों की प्रतिक्रिया मात्र है। वेलिंग्टन अपने बचपन में ही लकड़ी के सैनिकों के साथ भविष्य की लड़ाइयाँ लड़ता था। यदि किसी ने इस एकत्व के मर्म को समझ लिया है, वह कभी भी, किसी भी जन्म में, तब तक रुकेगा नहीं, जब तक वह अपने साधनों द्वारा अपने गहन व्यक्तित्व तक फिर से नहीं पहुँच जाता।

मनुष्य की क्षमताएँ कितनी अद्भुत हैं! कोई मनुष्य चाहे कितना भी अधम अथवा दासोचित हो, उसके भीतर अनन्त की सम्भावनाएँ छिपी रहती हैं। विश्व का चरम सत्य सत्ता नहीं, मनुष्य है और ईश्वर उस मनुष्य का चरम सत्य है। इसलिए सभी मनुष्य अपने आप पर विश्वास रखें। सभी मनुष्यों को हम कहें – शक्तिशाली होओ। मनुष्य के समान आचरण करो। आपके भीतर जो तत्त्व है, उसे प्रगट करो। स्वयं पर विश्वास करो, क्योंकि जो पूछता है, उसे उत्तर मिलता है, जो खोजता है, वह पाता है, जो खटखटाता है, उसके लिए द्वार खुल जाता है। हमारे प्रत्येक के भीतर सम्पूर्ण (उज्ज्वलतम) अतीत निहित है। किसी भी क्षण वह सर्वोच्च प्रकाश मुझमें प्रकाशित हो सकता है। किसी भी क्षण मैं उन निर्गुण ईश्वर के हाथ और अधर बन सकता हूँ। फिर क्यों मैं लाभ अथवा हानि में दुर्बल बनूँ? क्या मैं अनन्त आत्मा नहीं हूँ? मैं किससे और किसके लिए डरूँ? अब से गिड़गिड़ाना और थोथी प्रार्थनाओं का मैं त्याग कर दूँ। अब से आशा, समस्त भय, समस्त इच्छाओं और समस्त लज्जा को मैं उखाड़कर फेंक दूँ। केवल मनुष्य बनने में ही मैं सन्तुष्ट होऊँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यदि मैं ऐसा नहीं हो सका, तो राज-रत्न और राजपरिधान भी मेरी निर्लजता को ढक नहीं सकेंगे और यदि मुझमें मनुष्यता है, तो भिखारी के फटे-पुराने कपड़े भी मेरी पौरुष की कीर्ति को कम नहीं कर सकेंगे। OOO

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (१२)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

७. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः

धन और सम्पत्ति की भूख ऐसी है, जो कम नहीं होती अपितु सतत बढ़ती ही रहती है। अन्त में मनुष्य थककर, हाँफकर खाली हाथ मर जाता है। वह सम्पूर्ण जीवन सतत भाग-दौड़कर सत्ता और सम्पत्ति अर्जित करता है, किन्तु सुख-शान्ति और सच्चा प्रेम खो देता है। सम्पत्ति संचय करने की लालसा में मनुष्य अपनी आत्मा को खो देता है। पृथ्वी पर आकर जिसे पाना है, जिसके लिये जन्म हुआ है, वही खो दें, तो फिर सम्पत्ति का पहाड़ भी मिल जाए, तो इससे क्या लाभ हुआ? मृत्युशय्या पर पड़े विश्वविजयी राजा सिकंदर को जीवन के अन्त में यह सत्य समझ में आया, परन्तु तब तक उसके पास जीवन को सुधारने का समय ही नहीं बचा था। इसलिये उसने कहा, "जब मेरा जनाजा निकालो, तब मेरे दोनों हाथ बाहर रखना, जिसे देखकर लोग यह जान लें कि सारे विश्व को जीतने वाला इतना महान बादशाह भी एकदम खाली हाथ जा रहा है।"

यद्यपि मनुष्य अपनी धन-सम्पत्ति मृत्यु के बाद साथ में नहीं ले जाता है, परन्तु उस धन या सम्पत्ति से सम्बन्धित अनेक बातें उसके चित्त में सूक्ष्मरूप से साथ जाती हैं। यदि धन की लालसा हो, असंतोष हो, धन का उपयोग न कर सकने का दुख हो या अनैतिकता से अर्जित धन के पीछे के दुष्कर्मों का पाप हो, ये सभी चित्त के संस्कार रूप में उसके साथ जाते हैं। इससे अगले जन्म में फिर इन संस्कारों के अनुसार जीवन बन जाता है। यदि इसी धन का सदुपयोग किया गया हो, गरीबों के कल्याण के लिये धन खर्च किया हो, तो ऐसे सत्कर्मों के द्वारा उसकी चेतना विशाल बनती है, उसके शुभ संस्कार उसके साथ जाते हैं। उसका यह जीवन तो सुख-शान्ति से बीतता ही है, अगले जीवन में भी उसे सुख-शान्ति मिलती है। इसलिये धनिकों के लिये सुख-शान्ति प्राप्त करने का एक मार्ग यह भी है कि उन्हें अन्य लोगों के उत्कर्ष के लिये, कल्याण के लिये धन का उपयोग करना चाहिये। यही मार्ग स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के महान उद्योगपति रॉकफेलर को बताया था।

अमेरिका में एक दिन स्वामी विवेकानन्द अपने अध्ययन कक्ष में पुस्तक पढ़ने में एकाग्रचित्त थे। यह एकाग्रता ऐसी थी कि कोई सामने आकर खड़ा हो जाय, तो भी पता न चले। वे पढ़ने में तल्लीन थे, तभी उनकी टेबल पर टक-टक ध्वनि हुई, तो उन्होंने आँखें ऊपर उठाकर देखा कि एक कीमती सूट में सजे, चेहरे पर गुस्से वाला भाव लिये रॉकफेलर खड़ा था। अपने सामने अचानक खड़े हुए व्यक्ति को देखकर स्वामीजी को आश्चर्य तो अवश्य हुआ, किन्तु उनके आश्चर्य व्यक्त करने के पहले ही उस व्यक्ति ने कहा, "मैं रॉकफेलर हूँ।" यह कहते समय उसने सोचा होगा कि मेरा नाम सुनकर यह भारत का साधु खड़ा हो जाएगा और सम्मान करेगा, क्योंकि वह व्यक्ति तत्कालीन अमेरिका का सबसे समृद्ध उद्योगपति, पेट्रोलियम उद्योग का राजा था। पूरे अमेरिका में वह विख्यात था। सभी उससे मिलने के लिये आतुर रहते थे। यहाँ वह स्वयं चलकर इस संन्यासी से मिलने आया है, तो संन्यासी बहुत सम्मान देगा, ऐसी उसकी धारणा थी, पर हुआ इसके विपरीत।

स्वामीजी ने तटस्थ भाव से पूछा, "तुम्हें क्या चाहिये?" स्वामीजी के इस प्रश्न से उसे झटका लगा, अहंकार को थोड़ी चोट लगी, इसलिये उसने कहा, "मुझे कुछ नहीं चाहिये।" तब स्वामीजी ने दूसरा प्रश्न पूछा, "तो किसलिये यहाँ पर आये हो?" रॉकफेलर के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। अपेक्षा से विपरीत परिस्थिति होने से वह प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। तभी स्वामीजी ने कहा, "तुम्हारे मन में शान्ति नहीं है, इसलिये तुम शान्ति प्राप्त करने के लिये यहाँ आए हो।" यह सुनकर उसे आश्चर्य हुआ। क्योंकि उसके मन में बिलकुल शान्ति नहीं थी।

अपने मित्रों के कहने से ही वह स्वामीजी के पास शान्ति के लिये आया था। परन्तु स्वामीजी को इसका पता कैसे चल गया, इसे वह समझ नहीं पा रहा था। तब फिर स्वामीजी ने उसके जीवन की कई घटनाओं के बारे में कहा, जिन्हें रॉकफेलर के अलावा कोई नहीं जानता था। उसने स्वामीजी से पूछा, "किसने आपको यह सब बताया?" तब स्वामीजी ने कहा, "मैं तुम्हारे मन की बातें उसी प्रकार से जान सकता हूँ, जिस प्रकार से काँच की अलमारी में वस्तुएँ दिखती हैं।" इन बातों से रॉकफेलर को बहुत आश्चर्य हुआ और उसे स्वामीजी विस्मयजनक लगे। वह सुनता रहा। स्वामीजी ने कहा, "यदि तुम्हारे मन को सच्ची शान्ति चाहिये, तो तुम्हारे पास जो सम्पत्ति है, उसका उपयोग गरीबों के कल्याण के लिये करो। तुम अपनी सम्पत्ति के स्वामी नहीं, संरक्षक हो। यह विपुल सम्पत्ति तुम्हें अनेक लोगों के कल्याण के लिये दी गई है। जब तुम इसका उपयोग वैसा करोगे, तब तुम्हें सच्ची शान्ति मिलेगी।"

रॉकफेलर किसी से इस प्रकार के परामर्श लेने के लिये तैयार नहीं था, फिर वह अकिंचन संन्यासी की क्यों सुने? वह पैर पटकता चला गया। किन्तु कुछ दिन बाद वह फिर स्वामीजी से मिलने आया। अचानक आकर स्वामीजी के हाथों में एक कागज थमा दिया, जिसमें उसने एक बड़ी दान-राशि किसी सेवाभावी संस्था को देने की इच्छा प्रकट की थी। स्वामीजी ने कागज पढ़ा, पर कुछ बोले नहीं, तब रॉकफेलर ने कहा, "स्वामीजी, आपको मुझे धन्यवाद देना चाहिये, आपकी बात को स्वीकार करके मैंने इस सम्पत्ति का दान किया है।" तब स्वामीजी ने कहा, "मि.रॉकफेलर, धन्यवाद तो तुम्हें मुझे देना चाहिये, क्योंकि मैंने तुम्हें सच्ची शान्ति का मार्ग बताया है।" इसके बाद तो रॉकफेलर ने अपनी सम्पत्ति का बड़ा भाग लोककल्याण के कार्यों में लगाया। अपनी आत्मकथा में उसने लिखा है, "हम जितनी दूसरों की सेवा करेंगे, उतनी अधिक शान्ति हमें मिलेगी।" शान्ति का यह मार्ग उसे स्वामी विवेकानन्द के पास से इस प्रकार मिला था।

'तुम अपनी सम्पत्ति के स्वामी नहीं, ट्रस्टी हो।' ट्रस्टीशिप मैनेजमेन्ट के गाँधीजी के दिये हुए इस सिद्धान्त की प्रस्तुति सौ वर्ष पहले स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के महान उद्योगपति रॉकफेलर के समक्ष की थी। लेकिन यह सिद्धान्त भारतीय संस्कृति के लिये नया नहीं है। हमारी महान संस्कृति की नींव ही इस सिद्धान्त पर खड़ी है। ईशोपनिषद का प्रथम श्लोक ही इस सिद्धान्त को प्रकट करता है –

ईशा वास्यमिदंसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

"इस जगत् में जो कुछ भी है, वह ईश्वर से व्याप्त है। इसलिये उसका त्यागपूर्वक उपभोग करो। किसी दूसरे के धन की स्पृहा मत करो।"

इस एक श्लोक में धन की प्राप्ति, उपभोग और वितरण का सिद्धान्त आ जाता है। आधुनिक समाजवाद का मूल भी इस श्लोक में है। यहाँ धन-सम्पत्ति प्राप्त करने का निषेध नहीं है, उसके उपभोग का निषेध नहीं है, केवल स्वार्थ त्याग करके उपभोग करने की बात है। अपने पास जो कुछ है, उसमें से दूसरों को देकर उपभोग करने की बात है। अत: दूसरों का छीनकर, बलपूर्वक लेने की तो बात ही नहीं रही। दूसरों के धन की स्पृहा ही नहीं करनी है। अनीति, अनधिकार, दूसरों का स्वामित्व, अन्य का शोषण करके दूसरों को दुख देकर कुछ भी पाने की बात ही नहीं रहती है। यहाँ तो धन धर्म और नीति के मार्ग से मिलता है। उसमें से भी अन्य को थोड़ा देकर फिर स्वयं के उपभोग करने की मनुष्य-धर्म की बात कही गई है।

हमारी भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ चार पुरुषार्थ हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सुख-शान्तिपूर्वक जीने के लिये मनुष्य को इन चारों पुरुषार्थों की अत्यन्त आवश्यकता है। धर्म का पालन करते हुए सम्पत्ति का उपार्जन करना, धर्मसम्मत काम की पूर्ति करके प्रजा को आगे बढ़ाना और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करके परमात्मा में मिल जाना, ये जीवनकार्य हैं। इसके लिये आचारसंहिता हमारे ऋषि-मुनियों ने वेद, उपनिषदों में स्पष्टत: दे दी है। इस आचारसंहिता का पालन करते हुए जीवन का प्रयोजन तो सिद्ध होता ही है, साथ ही समाज का भी कल्याण होता है। इसमें भी यदि किसी में तीव्रतम वैराग्य हो और ईश्वरप्राप्ति ही लक्ष्य हो, तो (विधि-निषेधात्मक) धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों का अतिक्रमण करके केवल मोक्ष के लिये संसार छोड़कर संन्यास ग्रहण कर सकता है, यह मार्ग भी ऋषि-मुनियों ने प्रदान किया है। परन्तु यह मार्ग सामान्य मनुष्यों के लिये नहीं है। सामान्य मनुष्यों को तो जीवन में चारों पुरुषार्थ करने हैं। **(क्रमशः)**

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (२०)

स्वामी भास्करानन्द

अनुवाद : ब्र. चिदात्मचैतन्य, नागपुर

बनबाबा : एक महान कर्मयोगी

बनबिहारी महाराज

उनका नाम स्वामी मुक्तानन्द जी महाराज (१९०३-१९९६) था, लेकिन रामकृष्ण संघ के साधु उन्हें 'बनबिहारी महाराज' के नाम से ही जानते थे। महाराज ने अपने संन्यास जीवन का अधिकांश समय रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी में सेवा में व्यतीत किया था। बनारस के जो लोग एकाधिक बार हमारे अस्पताल में चिकित्सा के लिए गए थे, वे सभी लोग उन्हें श्रद्धा से 'बनबाबा' कहते थे। महाराज अस्पताल के शल्य-विभाग में सेवा करते थे। वे वहाँ घावों की मरहम-पट्टी, शल्योपचार तथा अन्य प्रकार की सेवा करते थे। बनबाबा वहाँ दिन-पर-दिन, वर्ष-पर-वर्ष यथासम्भव श्रेष्ठतम समर्पण के साथ सेवा करते थे। इसके कारण घाव को देखने मात्र से ही उनको यह अनुमान हो जाता था कि इसको अच्छा होने में कितना समय लगेगा। महाराज अपने कार्य में इतने दक्ष हो गये थे कि वे जिस घाव की मरहम-पट्टी करते; किसी अन्य के द्वारा की गई मरहम-पट्टी की तुलना में वह शीघ्र ठीक हो जाता था। कुछ शल्य-चिकित्सक इस शर्त पर जटिल शल्य-चिकित्सा करने पर सहमत हो जाते कि ऑपरेशन के बाद रोगी की देखभाल बनबाबा करेंगे।

लगभग चालीस वर्ष पूर्व मैंने उन्हें सर्वप्रथम बनारस सेवाश्रम में देखा था। तब उनकी आयु ५० वर्ष की होगी। उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट था। उनके चेहरे की मनमोहक हँसी बालसुलभ सरलता को प्रकट करती थी। महाराज अक्लान्त सेवक थे। वे कर्मयोग के सच्चे मनोभाव (शिव भाव से जीव सेवा) से रोगियों की सेवा करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते थे।

प्राय: मध्य रात्रि में रोगियों को अस्पताल के आपातकालीन रोगीकक्ष में लाया जाता था और बिना खिन्न हुए बनबाबा शीघ्र जाकर रोगियों की देखरेख करते थे। कई दिन तो उन्हें मुश्किल से सोने को मिलता था। लेकिन मैंने इसके लिए उनको कभी भी उद्विग्न होते नहीं देखा।

बनबाबा को भगवान विश्वनाथ के मन्दिर में जाना अत्यधिक पसन्द था। प्रतिदिन प्रात:काल चाहे वह कँपानेवाली ठण्डी हो, चाहे ग्रीष्म की तपती गर्मी हो, वे आश्रम से लगभग एक किलोमीटर मार्ग पैदल चलकर गंगा स्नान करते और तत्पश्चात् विश्वनाथ मन्दिर में भगवान शिव की पूजा करने जाते। वृद्धावस्था में उनके घुटनों में गठिया का रोग हो गया था। लेकिन यह उनकी दैनन्दिन के पालन में बाधक नहीं बन सका। बाद में वे व्हीलचेयर पर बैठकर जाते थे।

यहाँ तक कि जब बनबाबा चलने में पूरी तरह से असमर्थ थे, तब भी वे अस्पताल जाते और रोगियों की मरहम-पट्टी करने में सहायता करते थे। एक ब्रह्मचारी या सेवक उन्हें साधु-निवास से अस्पताल में व्हीलचेयर से ले जाते और वे रोगियों को ईश्वर की सच्ची अभिव्यक्ति मानकर आनन्द से सेवा करते थे।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जो चिकित्सक या उपचारिका (नर्स) अस्पताल में लम्बे समय तक कार्यरत रहते हैं, वे लोग रोगियों की मृत्यु से भावनात्मक रूप से प्रभावित नहीं होते। लेकिन बनबाबा ने कभी भी हार्दिक संवेदना नहीं खोई। मृत रोगियों के शोकार्त्त परिवार के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति रहती थी। हमारे हिन्दू शास्त्र कहते हैं, जो भी व्यक्ति काशी में मरता है, भगवान शिव की कृपा से वह मुक्त हो जाता है। हमारे अस्पताल में मरनेवाले रोगियों के लिए महाराज का यह विश्वास अवश्य सान्त्वना देता था। महान समर्पण की भावना से रोगियों की सेवा करने के अलावा बनबाबा का ऐसा प्रेम और करुणापूर्ण हृदय था कि उनके सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों के वे प्रिय बन गए थे ।

रामकृष्ण संघ के अन्य संन्यासियों की ही भाँति बनबाबा भी विनोदी स्वभाव के थे। एक सत्य विनोदपूर्ण घटना उन्होंने मुझे बतायी थी। इस सन्दर्भ में कुछ बातें बताना आवश्यक है। बनारस सेवाश्रम में एक बड़ी गोशाला है। वहाँ बहुत सी गायें हैं। गोशाला का दूध अस्पताल में भर्ती रोगियों को दिया जाता था। कभी-कभी गायों का चारा खरीदने के लिए किसी को गाँव में भी जाना पड़ता था। एक समय बनबाबा को चारा खरीदने के लिए एक गाँव में जाना पड़ा। वहाँ वे कुछ किलोमीटर रेलगाड़ी से गये। वे गाँव के स्टेशन पर पहुँचे। उनका स्वागत करने के लिए चारा देनेवाला व्यापारी

स्टेशन पर आया। व्यापारी ने बनबाबा से अपने घर में एक रात अतिथि के रूप में रहने के लिए आग्रह किया। महाराज ने उसे स्वीकार भी कर लिया। अब बनबाबा ने जैसी घटना बताई थी, वैसे ही वर्णन करता हूँ –

"व्यापारी का घर रेलवे स्टेशन के निकट ही था। ग्रामीणों के साधारण घरों से होते हुए हम कच्ची सड़क से पैदल जाने लगे। तदनन्तर हम एक बड़े भव्य भवन के पास पहुँचे। मैंने व्यापारी से पूछा, "यह भवन किसका हैं?"

"दोनों हाथों को जोड़कर प्रणाम मुद्रा में व्यापारी ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया, 'महाराज, यह आपका मकान हैं !' इससे मैं समझ गया कि यह मकान इस व्यापारी का ही है।

"उसके बाद हमलोगों ने उस भवन के अतिथि-कक्ष में प्रवेश किया। उसमें छोटे-बड़े बहुत-से बच्चे थे। एक-एक कर उन सभी ने मुझे प्रणाम किया। मैंने व्यापारी से पूछा, 'ये बच्चे किसके हैं?'

"व्यापारी ने बहुत विनम्रता से उत्तर दिया, 'महाराज, ये सभी आपके ही हैं।' मैं समझ गया, ये बच्चे इस व्यापारी के हैं।

"तभी एक स्त्री, सम्भवत: उसकी पत्नी ने आकर मुझे प्रणाम किया। मैं इतना साहसी नहीं था कि व्यापारी से पूछूँ, 'यह स्त्री कौन है !' "

साधु-जीवन में विनोद

शिलाँग आश्रम के पड़ोस में मुखर्जी बाबू का परिवार रहता था। एक रात जब आश्रम के साधुवृन्द भोजन कर रहे थे, तो अचानक बिना पूर्व सूचना के मुखर्जी बाबू हमारे भोजन-कक्ष के द्वार पर आकर खड़े हो गये। आश्रम के अध्यक्ष स्वामी सौम्यानन्द जी महाराज ने उनसे पूछा, "क्या हुआ मुखर्जी बाबू? क्यों आप इतनी रात में आये हैं?"

मुखर्जी बाबू ने कहा, "महाराज, कृपया असमय आने के लिए मुझे क्षमा कीजिए। मैं यहाँ इसलिये आया हूँ, क्योंकि किसी विषय को लेकर मेरी पत्नी के साथ वाद-विवाद हो गया है। आपका भोजन-कक्ष हमारे भोजन-कक्ष से कुछ ही दूरी पर है। हमेशा जब आप लोग दोपहर तथा रात का भोजन करते हैं, तो आपके भोजन-कक्ष से हमें हँसी के ठहाके सुनने को मिलते हैं। मेरी पत्नी कहती है, 'साधु लोग अवश्य ही बहुत अच्छा भोजन करते होंगे। वे प्रतिदिन स्वादिष्ट व्यंजन खाते होंगे; जिससे वे बहुत प्रसन्न हैं।'

लेकिन मैंने उनसे कहा, - 'आश्रम गरीब है। संन्यासी लोग स्वादिष्ट भोजन कहाँ से पायेंगे? इसलिए मैं यह देखने आया हूँ कि आपलोग क्या खा रहे हैं? "

महाराज ने कहा, "आइये, बैठिये और हमारे साथ भोजन कीजिये। तब आप समझ जायेंगे कि हम लोग क्या खाते हैं।"

लेकिन मुखर्जी बाबू न तो हमारे साथ बैठे और न ही भोजन ही किये। वे केवल खड़े-खड़े हमारा भोजन देखते रहे। हमारे भोजन में केवल भात, दाल और एक साधारण सब्जी थी। दूसरा कुछ भी नहीं था। एक मध्यम वर्गीय परिवार के लिये यह बहुत सामान्य भोजन है, जिसे हमलोग प्रतिदिन खाते थे। अपने चेहरे पर विजयी मुसकान लिए मुखर्जी बाबू घर चले गये। कालान्तर में मुखर्जी बाबू अपनी धर्मपत्नी द्वारा निर्मित कुछ मिष्टान्न हमारे मन्दिर के लिए कभी-कभी लाते थे। इसका उद्देश्य संन्यासियों को एक ही प्रकार के भोजन की अपेक्षा बीच-बीच में कुछ स्वादिष्ट भोजन खिलाना था।

जो साधु-जीवन से अपरिचित हैं, वे भले ही सोच लें कि साधु को विनोद नहीं करना चाहिए। किन्तु रामकृष्ण संघ के संन्यासियों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। श्रीरामकृष्ण ने माँ जगदम्बा से कहा था, "माँ, मुझे शुष्क साधु मत बनाना, मुझे सरस बनाये रखना।" विनोद प्राय: लोगों की क्षति और तिरस्कार करने के लिए किया जाता है। लेकिन रामकृष्ण संघ के संन्यासी वैसा विनोद नहीं करते हैं। रामकृष्ण आश्रमों में होनेवाला विनोद निष्कपट एवं हानिरहित होता है। जब संन्यासीवृन्द भोजनालय में मिलते हैं, तो वे लोग विभिन्न प्रकार की रोचक कहानियाँ सुनाते हैं, जिससे बड़ी प्रसन्नता और हँसी होती है।

साधुवृन्द कभी-कभी नकल एवं व्यावहारिक चुटकुलों का भी आनन्द लेते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण देव के महान शिष्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज रामकृष्ण संघ के अनेक वर्षों तक संघाध्यक्ष थे। वे नकल का आनन्द लेते थे। वे कभी-कभी नकल करने में निपुण किसी कनिष्ठ साधु को अपने सामने किसी की नकल कर दिखाने के लिए कहते थे। श्रीरामकृष्ण स्वयं भी अच्छे नकलची थे। श्रीरामकृष्णवचनामृत में हम पढ़ते हैं, "श्रीरामकृष्ण छोटे तख्त पर अपने कमरे में बैठे हुए है और कुछ शुद्ध-सत्त्व भक्तों के संग आनन्द ले रहे हैं। उन्होंने बंगाल की गायिकाओं के हाव-भाव का नकल करना आरम्भ किया। उनके अद्भुत नकल को देखकर भक्तगण जोर-जोर से हँसने लगे।" **(क्रमशः)**

आत्मबोध

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा
रागद्वेषादिराक्षसान् ।
योगी शान्तिसमायुक्त आत्मारामो
विराजते ।।५०।।

पदच्छेद – *तीर्त्वा मोह-अर्णवम् हत्वा राग-द्वेष-आदि-राक्षसान् योगी शान्ति-समायुक्तः आत्मारामः विराजते ।*

अन्वयार्थ – (जीवन्मुक्त) **योगी** योगी, **मोह-अर्णवम्** मोह-रूपी समुद्र को **तीर्त्वा** पार करके, **राग-द्वेष-आदि-** राग-द्वेष-आदि **राक्षसान्** राक्षसों को **हत्वा** मार करके, **शान्ति-** शान्ति **समायुक्तः** से युक्त होकर **आत्मारामः** आत्मा में ही रमण करता हुआ **विराजते** स्थित रहता है ।

श्लोकार्थ – (जीवन्मुक्त) योगी मोह-रूपी समुद्र को पार करके, राग-द्वेष-आदि राक्षसों को मार करके, शान्ति से युक्त होकर, आत्मा में ही रमण करता हुआ स्थित रहता है ।

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः ।
घटस्थदीपवत्स्वस्थः स्वान्तरेव प्रकाशते ।।५१।।

पदच्छेद – *बाह्य अनित्य-सुख-आसक्तिम् हित्वा आत्म-सुख-निर्वृतः घटस्थ-दीपवत् स्वस्थः स्व-अन्तः एव प्रकाशते ।*

अन्वयार्थ – (वह जीवन्मुक्त) **बाह्य** बाह्य **अनित्य-** अनित्य **सुख-** सुखों की **आसक्तिम्** आसक्ति को **हित्वा** त्याग करके, **आत्म-सुख-निर्वृतः** आत्मा के आनन्द से सन्तुष्ट हुआ, **घटस्थ-** घड़े में स्थित **दीपवत्** दीपक के समान **स्वस्थः** स्वयं में स्थित होकर **एव** ही **स्व-अन्तः** अपने भीतर **प्रकाशते** प्रकाशित होता रहता है ।

श्लोकार्थ – (वह जीवन्मुक्त) बाह्य अनित्य सुखों की आसक्ति को त्याग करके, आत्मा के आनन्द से सन्तुष्ट हुआ, घड़े में स्थित दीपक के समान, स्वयं में स्थित होकर अपने भीतर ही प्रकाशित होता रहता है ।

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैरलिप्तो व्योमवन्मुनिः ।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ।।५२।।

पदच्छेद – *उपाधिस्थः अपि तत् धर्मैः अलिप्तो व्योमवत् मुनिः सर्ववित् मूढवत् तिष्ठेत् असक्तः वायुवत् चरेत् ।*

अन्वयार्थ – (वह) **मुनिः** मुनि **उपाधिस्थः** उपाधियों में स्थित होकर **अपि** भी **तत्** उनके **धर्मैः** गुणों से **व्योमवत्** आकाश की भाँति **अलिप्तो** निर्लिप्त रहता है, **सर्ववित्** सब कुछ जानते हुए (भी) **मूढवत्** मूढ़ की तरह **तिष्ठेत्** रहता है (और) **असक्तः** अनासक्त होकर **वायुवत्** वायु के समान **चरेत्** विचरण करता है ।

श्लोकार्थ – (वह) मुनि उपाधियों में स्थित होकर भी उनके गुणों से आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है, सब कुछ जानते हुए (भी) मूढ़ की तरह निवास करता है (अथवा) अनासक्त होकर वायु के समान विचरण करता है ।

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः ।
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा ।।५३।।

पदच्छेद – *उपाधि-विलयात् विष्णौ निर्विशेषम् विशेत् मुनिः जले जलम् वियत् व्योम्नि तेजः तेजसि वा यथा ।*

अन्वयार्थ – **उपाधि-** उपाधियों के **विलयात्** नष्ट हो जाने पर, (वह) **मुनिः** मुनि, **जले** पानी में **जलम्** पानी **व्योम्नि** आकाश में **वियत्** आकाश **वा** अथवा **तेजसि** तेज में **तेजः** तेज **यथा** के समान, **निर्विशेषम्** निर्गुण ब्रह्म (अर्थात्) **विष्णौ** (सर्वव्यापी) विष्णु में **विशेत्** विलीन हो जाता है ।

श्लोकार्थ – उपाधियों के नष्ट हो जाने पर, (वह) मुनि, पानी में पानी आकाश में आकाश अथवा तेज में तेज के समान, निर्गुण-स्वरूप (अर्थात् सर्वव्यापी) विष्णु में विलीन हो जाता है ।

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ।।५४।।

पदच्छेद – *यत् लाभात् न अपरः लाभः यत् सुखात् न अपरम् सुखम् यत् ज्ञानात् न अपरम् ज्ञानम् तत् ब्रह्म इति अवधारयेत् ।*

अन्वयार्थ – **तत्** उसी को **ब्रह्म इति** ब्रह्म **अवधारयेत्** समझो, **यत्** जिसकी **लाभात्** प्राप्ति से **अपरः** बढ़कर (अन्य कोई) **लाभः** प्राप्ति **न** नहीं है, **यत्** जिसके **सुखात्** सुख से **अपरम्** बढ़कर (अन्य कोई) **सुखम्** सुख **न** नहीं है, जिसके **ज्ञानात्** ज्ञान से **अपरम्** बढ़कर (अन्य कोई) **ज्ञानम्** ज्ञान **न** नहीं है ।

श्लोकार्थ – उसी को ब्रह्म समझो, जिसकी प्राप्ति से बढ़कर (अन्य कोई) प्राप्ति नहीं है, जिसके सुख से बढ़कर (अन्य कोई) सुख नहीं है, जिसके ज्ञान से बढ़कर (अन्य कोई) ज्ञान नहीं है ।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के १५वें संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज ब्रह्मलीन हुए

अत्यन्त दुख से हम सूचित करते हैं कि रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज रविवार १८ जून, २०१७ को ५.३० बजे महासमाधि में लीन हो गये। उनकी आयु ९८ वर्ष की थी। उन्हें २१ फरवरी, २०१५ को कोलकाता के रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान अस्पताल में भर्ती किया गया था। उनके पूत शरीर का अन्तिम संस्कार बेलूड़ मठ में सोमवार, १९ जून, २०१७ को किया गया।

स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज का जन्म बुद्ध पूर्णिमा के पावन दिवस पर मई, १९१९ को ढाका के समीप सबजपुर में हुआ था। उन्हें श्रीरामकृष्ण के शिष्य स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज से १९३८ में मन्त्र-दीक्षा प्राप्त हुई। ३ जनवरी, १९४१ को २२ वर्ष की आयु में वे रामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुए। १९४५ में रामकृष्ण संघ के ६वें संघाध्यक्ष स्वामी विरजानन्द जी महाराज ने उन्हें ब्रह्मचर्य-दीक्षा दी और १९४९ में संन्यास-दीक्षा देकर उन्हें स्वामी आत्मस्थानन्द नाम दिया।

बेलूड़ मठ और संघ के अन्य आश्रम देवघर विद्यापीठ, अद्वैत आश्रम, मायावती में सेवा करने के साथ-साथ उन्हें स्वामी विरजानन्दजी महाराज की सेवा का अवसर भी प्राप्त हुआ। वे हिमालयस्थ श्यामला ताल आश्रम में कई वर्षों तक उनके सान्निध्य में रहे। १९५२ में राँची सेनीटोरियम आश्रम में उन्हें सह-सचिव के रूप में सेवाभार दिया गया। उन्होंने उस आश्रम के सेवाकार्यों में विकास के लिये बहुत श्रम किया। १९५८ में उन्हें रंगून (यांगून म्यानमार) के सेवाश्रम के सचिव के रूप में भेजा गया। उन्होंने सेवाश्रम के अस्पताल का विकास किया और शीघ्र ही वह म्यानमार के सबसे अच्छे अस्पताल के रूप में प्रसिद्ध हो गया। जब सैन्य प्रशासकों ने आश्रम को ले लिया, तब वे १९६५ में भारत चले आये। १९६६ में राजकोट आश्रम में महाराज की अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति हुई। राजकोट आश्रम के भव्य मन्दिर का निर्माण महाराज के नेतृत्व में हुआ।

१९७३ में वे रामकृष्ण मठ के न्यासी और रामकृष्ण मिशन की संचालन समिति के सदस्य चयनित हुए। १९७५ में वे रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-महासचिव के रूप में नियुक्त हुए। मठ और मिशन के राहत-विभाग के प्रभारी के रूप में महाराज द्वारा भारत के विभिन्न स्थानों, नेपाल तथा बांग्लादेश में बहुत बड़े राहत कार्य सम्पन्न हुए। श्रद्धेय स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज १९९२ में रामकृष्ण-मठ मिशन के महासचिव हुए और पाँच वर्षों तक इस सेवाभार का वहन किया। १९९७ में वे सह-संघाध्यक्ष बने और ३ दिसम्बर, २००७ को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के संघाध्यक्ष हुए।

स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज ने भारत में रामकृष्ण संघ के अनेक आश्रमों और कुछ प्राइवेट आश्रमों का परिदर्शन किया। श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त के संदेश के प्रचार हेतु उन्होंने १९९८ में अमेरिका, कनाडा, जापान और सिंगापुर की यात्रा की। इसके अलावा उन्होंने मलेशिया, फीजी, श्रीलंका और बांग्लादेश की भी यात्रा की। इनमें से अनेक स्थानों में पूजनीय महाराज ने अनेक साधकों को मन्त्र-दीक्षा भी प्रदान की।

श्रीरामकृष्ण देव और श्रीमाँ सारदा देवी के जन्मस्थान कामारपुकुर और जयरामबाटी में ग्रामीण विकास योजना के अन्तर्गत 'पल्लीमंगल' प्रकल्प तथा सारदापीठ (बेलूड़ मठ) में युवा प्रशिक्षण केन्द्र को आरम्भ करने में श्रद्धेय स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इसके अलावा पूजनीय महाराज की प्रेरणा से अनेक आध्यात्मिक केन्द्र और सेवा-प्रकल्प भी आरम्भ हुए।

स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज के उपदेश

• श्रीरामकृष्णवचनामृत में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ईश्वर ही नित्य और सब अनित्य है, इस शाश्वत मंत्र की पुनरावृत्ति की गयी है। श्रीरामकृष्ण के जीवन

में ईश्वरप्राप्ति के लिये तीव्र व्याकुलता, जीव और जगत की विस्मृति, देहाभिमान से रहित होना, ईश्वर-दर्शन का परम आनन्द, विभिन्न मतों और पथों से ईश्वरप्राप्ति का रसास्वादन, सविकल्प और निर्विकल्प समाधि आदि बातें विशेषरूप से देखी जाती हैं। काशीपुर उद्यान में उन्होंने भक्तों को आशीर्वाद दिया था – 'तुम सबको चैतन्य हो'। भगवत्प्राप्ति ही मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य है।

• श्रीरामकृष्ण की अनुभूतियों ने उन्हें इस द्वन्द्वात्मक जगत के अतीत एक दिव्य चैतन्य के राज्य में पहुँचा दिया था। श्रीरामकृष्ण को 'ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' की प्रत्यक्ष अनुभूति हुई थी, जिससे उनके लिए मन्दिर की माँ, नहबत में रहने वाली उनकी जन्मदात्री माँ और उनके चरण-सेवा करने वाली माँ सारदा में कोई भेद नहीं रह गया था।

• हम देखते हैं कि श्रीरामकृष्णावतार में वेदान्त व्यावहारिक हो गया था । जो वेदान्त साधक को उदार नहीं बनाता, जो वेदान्त मनुष्य के मन और उसकी इच्छा शक्ति को संयोग-जन्य सुख से ऊपर नहीं उठाता, जो वेदान्त जीवन को क्षुद्र स्वार्थ की सीमा से बाहर निकालकर परदुख-कातर नहीं बनाता, मानवमात्र के कल्याण की ओर उन्मुख नहीं करता, उस वेदान्त को श्रीरामकृष्ण तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। पूर्णमानवता के विकास के प्रमाण स्वरूप अनेक उदाहरण हम उन्हीं के जीवन में देखते हैं – जैसे निम्नजाति की महिला धनी लुहारिन को अपनी भिक्षामाता के रूप में स्वीकार करना, अक्षय की मृत्यु से कपड़ा निचोड़ने के समान हार्दिक वेदना का अनुभव करना, स्नेहमयी माता चन्द्रादेवी का ध्यान आते ही वृन्दावन में रहने की इच्छा का त्याग करना, सहधर्मिणी श्रीसारदा देवी के लिए आभूषण बनवाना और उनको यथायोग्य शिक्षा देना, केशव सेन की असाध्य बीमारी की अवस्था में माँ काली को चीनी और नारियल की मनौती मानना, बालकवत सरलता और माँ भवतारिणी पर निर्भरशील होना, हाथ में चोट लग जाने पर उसकी पीड़ा से अत्यन्त साधारण व्यक्ति की तरह व्यवहार करना, लोक व्यवहार में हास्य-विनोद करना, नरेन्द्रादि बालकों के कल्याण के लिए सदा सजग रहना, कलकत्तावासियों के अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये रानी रासमणि के दक्षिणेश्वर मन्दिर के प्रशान्त परिवेश को छोड़कर कोलकाता महानगरी में यात्रा करना, अरण्य के वेदान्त को घर-घर भेजने के लिये अधीर होना, गाड़ी से उतरने में लड़खड़ाते हुए मदिराग्रस्त गिरीश घोष को सान्त्वना देना, अभिनेता-अभिनेत्रियों के प्रति भी विशुद्ध प्रेम करना, तीर्थयात्रा में दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता को प्रमुखता देना, दीन-दुखियों की परेशानियों को दूर करने के लिए तत्पर होना, मानवमात्र के एकत्वबोध से कंगालों की जूठन को साफ करना, मेहतर के शौचालय को अपने हाथों से तथा केशों से साफ करना, मथुरबाबू के अनुरोध से उनकी पत्नी जगदम्बा दासी के रोग को स्वयं भोगना, माझियों के परस्पर कलह से स्वयं की देह पर आघात का अनुभव करना, श्वेत कुष्ठ को दूर कर आरोग्य प्रदान करने के लिए भीषण ज्वाला का अनुभव करना, गले की घोर यंत्रणा में भी आर्त और जिज्ञासुओं की सेवा में सर्वदा उद्यत रहना और सर्वोपरि – 'लाखों कष्ट उठाकर भी यदि उनका मंगल हो सके, कल्याण हो सके, तो उसे करूँगा' ऐसे उद्गार प्रकट करना आदि आदि। इस कथन से पता चलता है कि इस प्रकार के दयालु, हितचिंतक मानव-मित्र और कौन हो सकते हैं !

• श्रीमाँ सारदा देवी का संन्यासी एवं गृहस्थ सबके प्रति समान वात्सल्य था। जो दीक्षित नहीं थे, उन्होंने भी श्रीमाँ की ममता का अनुभव किया था। श्रीमाँ संन्यासियों की भी माँ थीं और गृहस्थों की भी। वे अपनी सभी सन्तानों का समान भाव से समादर करती थीं। उन्हें रुचि के अनुसार भोजन कराती थीं और जिसकी जैसी इच्छा हो, माँ उसे पूर्ण करती थीं। सबका एक ही अनुभव था कि माँ केवल उसे ही आन्तरिक भाव से सर्वाधिक स्नेह करती हैं। वे थीं सबकी माँ। दीक्षित सन्तानों के लिए श्रीरामकृष्ण देव से श्रीमाँ प्रार्थना करती थीं, "हे ठाकुर ! उन्हें चैतन्य दो, मुक्ति दो – उनका इहलोक-परलोक सब तुम्हीं संभालो। इस संसार में बड़ा दुख-दर्द है। उन लोगों को फिर से इस संसार में न आना पड़े।"

• श्रीमाँ सारदा देवी की प्रार्थना के फलस्वरूप ही रामकृष्ण संघ प्रतिष्ठित है। श्रीमाँ का संघ के प्रति असीम प्रेम एवं वात्सल्य था। संघ की स्थापना की सम्भावना एवं महिमा के प्रति उनका निश्चय अडिग था। उनकी ही इच्छा अन्तिम निर्णय के रूप में स्वीकृत होती थी। विश्वविजयी स्वामी विवेकानन्द से लेकर अन्य सभी लोग श्रीमाँ के आदेश के पालन में तत्पर रहते थे।

OOO

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद का वार्षिक सम्मेलन हुआ

१४ और १५ मई, २०१७ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद का वार्षिक सम्मेलन रामकृष्ण मिशन, नारायणपुर में 'विवेकानन्द इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल हेल्थ वेलफेयर एण्ड सर्विस' (विश्वास) के तत्त्वावधान में किया गया। १४ मई को भक्त-सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें कुल ३५० लोग उपस्थित थे। १५ मई को भावप्रचार परिषद की सभा हुई, जिसमें १४ आश्रमों के प्रतिनिधियों सहित कुल ६१ लोगों ने भाग लिया। सभा को स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी निखिलात्मानन्द, स्वामी व्याप्तानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी सुखानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने सम्बोधित किया। श्री हिमाचल मढ़रिया ने परिषद-मंच का संचालन किया। विधायी सत्र में परिषद के संयोजक, सह संयोजक का चुनाव हुआ। बेलूड़ मठ के प्रतिनिधि पर्यवेक्षक के रूप में पधारे पटना के सचिव स्वामी सुखानन्द जी ने १३ मई की शाम को 'केवट प्रसंग' पर और १५ मई की शाम को स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने 'श्रीराम अवतार का प्रयोजन' पर प्रवचन दिये।

स्वाीमी अभेदानन्द जी महाराज की १५०वीं जन्म-जयन्ती रामकृष्ण मिशन के विभिन्न आश्रमों द्वारा मनाई गयी – लखनऊ आश्रम ने २३ अप्रैल, २०१७ को भक्त सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें ३०० भक्तों ने भाग लिया।

वड़ोदरा आश्रम में १६ अप्रैल, २०१७ को भक्त-शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें ११० भक्त उपस्थित थे।

वराहनगर मठ के २३ अप्रैल, २०१७ की सार्वजनिक सभा में १०० लोग सहभागी हुए।

भगिनी निवेदिता की १५०वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन के विभिन्न आश्रमों द्वारा विभिन्न कार्यक्रम आयोजित हुए

दार्जिलिंग और **जलपाईगुड़ी** आश्रम के संयुक्त तत्त्वावधान में ३१ मार्च, २०१७ को सिलीगुड़ी में शोभायात्रा और सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें २१०० भक्तों ने भाग लिया।

जलपाईगुड़ी आश्रम ने १ अप्रैल, २०१७ को युवा-शिविर और सार्वजनिक सभा का आयोजन किया, जिसमें ३६०० लोग उपस्थित थे। **चेन्नई** मठ ने ८,९ अप्रैल को कपिलेश्वर मन्दिर, चेन्नई में रथयात्रा के समय २२००० लोगों को मट्ठा और शर्बत पिलाया। **सारगाछी** आश्रम में १२ अप्रैल को पश्चिम बंगाल की मुख्यमन्त्री ममता बनर्जी ने परिदर्शन किया। **इम्फाल** आश्रम में १९ अप्रैल को नये विद्यालय-भवन का उद्घाटन हुआ। **पुरी** मठ में पूज्य पाद स्वामी शिवमयानन्दजी ने २१ अप्रैल को साधु-निवास का उद्घाटन किया। **हैदराबाद** आश्रम में १० मार्च को हुई सांस्कृतिक प्रतियोगिता में ४००० छात्रों ने भाग लिया, २ अप्रैल के शिविर में ४५० विजेता छात्र सम्मिलित हुए।

रामकृष्ण विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी का वार्षिकोत्सव मनाया गया – ४ मई, २०१७ को रामकृष्ण-विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी का वार्षिकोत्सव मनाया गया। कार्यक्रम शाम ६ बजे प्रारम्भ हुआ। कार्यक्रम विद्यालय परिसर में अवस्थित स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति पर माल्यार्पण-पूजा से प्रारम्भ हुआ। श्रीरामकृष्ण-कक्ष में पूजा-आरती हुई। तत्पश्चात् रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द, रामकृष्ण सेवा समिति, बिलासपुर के सचिव श्री सतीश द्विवेदी, एसईसीएल के अधिकारी श्री एस.पी.दास जी ने सभागार में स्थित श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और माँ सरस्वती जी पर माल्यार्पण और धूप-दीप से पूजा की। बच्चों ने वैदिक मन्त्र और स्वागत गान किया। विद्यालय के प्राचार्य डॉ. एस. आर. सिंह जी ने विद्यालय की उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। उसके बाद बच्चों ने विभिन्न शिक्षाप्रद, भक्तिपरक और व्यंग्य-हास्यकर नृत्य, नाटक प्रस्तुत किये। मेधावी कलाकारों और विभिन्न प्रतियोगिताओं में विजेता छात्र-छात्राओं को अतिथियों द्वारा पुरस्कार वितरण किया गया। स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने छात्रों के चरित्र-निर्माण में उनके माता-पिता, शिक्षकों और नागरिकों के सहयोग की भूमिका को स्मरण दिलाया।

१९ मार्च, २०१७ को **रामकृष्ण मिशन, ढाका, बांग्लादेश** में शताब्दी महोत्वस मनाया गया, जिसका उद्घाटन रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज और बांग्लादेश के मुख्य न्यायाधीश श्री सुरेन्द्र कुमार सिंह ने किया। इस आठ-दिवसीय महोत्सव में देश-विदेश के लगभग पचास साधुओं, पाँच हजार भक्तों और बांग्लादेश के कई मन्त्रियों और अधिकारियों ने भाग लिया। इसमें भजन, कीर्तन, चंडीपाठ, व्याख्यान, संगीत आदि कार्यक्रम हुए।

OOO

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। — स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालयों में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १०००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय' योजना हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान - आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।